Con. 3. VII. 24. 48
350

अंक 7
संख्या 24

शुक्रवार,
10 दिसम्बर
सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद्

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

विधान का मसौदा-(जारी)..... 1581
[अनुच्छेद 27-क, नवीन अनुच्छेद 40-क तथा..... 1642
अनुच्छेद 41, 42 और 43 पर विचार]

भारतीय विधान-परिषद्

शुक्रवार, 10 दिसम्बर, सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद् कान्स्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः दस बजे समवेत् हुई। उपाध्यक्ष महोदय (डॉ. एच.सी. मुकर्जी) अध्यक्ष पद पर आसीन थे।

***बी. पोकर साहब बहादुर** (मद्रास : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, क्या मैं आपकी अनुमति से यह प्रस्ताव कर सकता हूं कि सभा आज एक बजे स्थगित की जाये, चूंकि आज शुक्रवार है और मुसलमान सदस्यों को जुम्मे की नमाज में भाग लेना है?

***उपाध्यक्षः** (डॉ. एच.सी. मुकर्जी): हम एक बजे सभा स्थगित कर देंगे। अपने मुसलमान भाइयों के प्रति यह सहृदयता दिखाने में मुझे विश्वास है कि सभा मुझसे सहमत है।

***माननीय सदस्य :** जी हां।

***बी. पोकर साहब बहादुरः** धन्यवाद, श्रीमान्!

विधान का मसौदा–(जारी)

अनुच्छेद 27-क

***उपाध्यक्षः** हम अनुच्छेद 27-क के सम्बन्ध में संशोधन संख्या 824 पर विचार करेंगे।

(संशोधन उपस्थित नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 825 भी डॉ. रघुवीर के नाम से है। वे सभा में उपस्थित नहीं हैं।

(संशोधन संख्या 825 उपस्थित नहीं किया गया।)

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

***उपाध्यक्षः** अब हम भाग 5 पर आते हैं। संशोधनों की छपी हुई सूची के पृष्ठ 106 में अनुच्छेद 41 से 44 तक के नये अनुच्छेदों पर संशोधन संख्या 1032 है, जो श्री गोपाल नारायण के नाम से है।

***प्रोफेसर के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, क्या मैं आपको यह स्मरण करा सकता हूं कि मेरा एक संशोधन जिसमें एक महान् सिद्धान्त सन्निहित है अर्थात् संशोधन संख्या 1032 स्थगित कर दिया गया था। सभा की सहमति से वह अनुच्छेद 40-क के साथ स्थगित कर दिया गया था। वह पृष्ठ 105 में दिया हुआ है।

***उपाध्यक्षः** जी हां, संशोधन संख्या 1030, प्रोफेसर के.टी. शाह।

नवीन अनुच्छेद 40-क

***प्रोफेसर के.टी. शाहः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 40 के बाद निम्नलिखित नवीन अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:

'40-A. There shall be complete separation of powers as between the principal organs of he State, *viz.*, the Legislative, the Executive and the Judicial.' "

(40-क. राज्य के मुख्य अंगों की अर्थात् विधान-मण्डल की, अधिशासी-वर्ग की और न्यायाधीश-वर्ग की शक्तियां बिल्कुल पृथक् होंगी।)

श्रीमान्, मेरे विचार से यह प्रावधान एक उदार विधान के लिये बहुत ही महत्त्वपूर्ण और आवश्यक है। श्रीमान्, मुझे यह ज्ञात है कि विधान के मसौदे में प्रधानमूलक शासन और संसदात्मक शासन के मध्य के मार्ग का अनुसरण किया गया है। संसदात्मक शासन में अधिशासी-वर्ग, विधान-मण्डल और न्यायाधीश-वर्ग के बीच एक प्रकार का सम्बन्ध रहता है। प्रधानमूलक शासन में इस प्रकार का कोई सम्बन्ध नहीं रहता और राज्य के तीन प्रमुख अंगों की बिल्कुल पृथक् शक्तियां होती हैं और प्रत्येक में राज्य के विभिन्न कार्यों के सम्बन्ध में लोगों की सर्वसत्ता सन्निहित रहती है।

पिछले दिनों के कटु अनुभव के आधार पर ही यह आदर्श सामने रखा गया है और इसी कारण कई आधुनिक राज्यों ने अपने विधानों को बनाने में इन अंगों

के पूर्णत: पृथक्करण के सिद्धान्त का ही अनुसरण किया है। शताब्दियों पूर्व इंग्लैण्ड के जैसे विधान में सम्पूर्ण प्राधिकार का अन्तिम रूप से सम्राट में ही संकेंद्रण होने से कई दोष उत्पन्न हो गये थे जिसके कारण गृह-युद्ध छिड़ा और सम्राट की हत्या कर दी गई और एक रक्तपातरहित क्रान्ति भी हुई जिसके फलस्वरूप एक अन्य सम्राट् को पदत्याग करना पड़ा और उसे देश से निष्कासित भी कर दिया गया। उसके उपरान्त जो व्यवस्था की गई वह अंग्रेज़ों की संस्कृति के अनुरूप थी और वह लिखित विधान के रूप में नहीं बल्कि शताब्दियों से प्रचलित प्रथाओं के रूप में प्रकट हुई। ये प्रथायें अब लिखित विधान से भी अधिक पवित्र हो गई हैं।

परन्तु मेरे विचार से हम इस समय अपने देश में इस प्रकार की व्यवस्था नहीं स्थापित कर सकते हैं। मेरे विचार से ऐसे देश में जहां एक बड़े पैमाने में स्वायत्त-शासन के प्रयोग किये जा रहे हैं, एक नये आधार पर निर्माण करना सम्भव न होगा। इस दशा में मैं यह अनुभव करता हूं कि जब हम अपने विधान को प्रभाव में लायें और जनतन्त्रात्मक प्रणाली को आरम्भ करें तो सबसे अच्छी बात तो यह होगी कि हम राज्य के प्रमुख अंगों की शक्तियों को बिल्कुल पृथक् कर दें।

श्रीमान्, यदि तीनों अंगों को पूर्णतया स्वतंत्र कर दिया जायगा तो न्यायाधीश-वर्ग और अधिशासी-वर्ग तथा न्यायाधीश-वर्ग और विधान-मण्डल के सम्बन्ध एक प्रकार से स्वतंत्र हो जायेंगे। यह मेरे विचार से जनसाधारण की स्वतंत्रता, नागरिक स्वतंत्रता और कानून द्वारा शासन करने की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। यदि उदाहरणार्थ न्यायाधीश-वर्ग और विधान-मण्डल के बीच सम्पर्क बना रहा और यदि सर्वोच्च न्यायाधिकारियों के लिये यह सम्भव हुआ कि वे विधान-मण्डल के सदस्य हो सकते हैं और विधान-मण्डल के सदस्यों के लिये यह सम्भव हुआ कि वे सर्वोच्च न्यायाधिकारी हो सकते हैं तो मेरे विचार से इसका भय बना रहेगा कि किसी मामले के गुणदोषों पर स्वतंत्र रूप से विचार न किया जायेगा किन्तु किसी दल-विशेष के प्रभावानुसार कानून का निर्वचन होगा। जनतंत्रात्मक व्यवस्था में विधान-मण्डल सिद्धान्तों से उतना प्रभावित नहीं हो सकता है जितना कि किसी दल-विशेष से।

मैं दलबन्दी की निन्दा नहीं कर रहा हूं। कृपा करके इस सम्बन्ध में मिथ्या धारणा न बनाइयेगा। मैं केवल यह बता रहा हूं कि दल आखिर ऐहिक तो हैं और ऐहिक बातों से ही उनका सम्बन्ध रहता है और इसलिये वे उस समय की बातों,

[प्रोफेसर के.टी. शाह]

अस्थायी विचारों और लोगों के प्रभाव को अधिक महत्त्व देंगे किन्तु न्यायाधीश-वर्ग पर इन बातों का प्रभाव न पड़ेगा। यह सर्वाधिक महत्त्व की बात है कि न्यायाधीश-वर्ग किसी प्रकार भी सन्देह का भाजन न बने और इसलिये ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये कि उस पर किसी प्रकार का कलंक भी न लगाया जा सके। मुझे आशा है कि इन शब्दों से कोई सज्जन रुष्ट न होंगे। राजनैतिक दलों में जिस प्रकार का विद्वेष फैला रहता है उससे न्यायालय पर किसी प्रकार का कलंक न आना चाहिये।

यदि राज्य के न्यायाधीश-वर्ग और अधिशसी-वर्ग के बीच सम्पर्क अथवा सम्बन्ध बना रहा तो यह सम्भव है कि जिन लोगों को विधान का निर्वचन करने तथा नागरिक स्वतंत्रताओं को संरक्षण करने और न्याय करने के लिये नियुक्त किया जायेगा, उन पर अनुचित रूप से प्रभाव डाला जायगा तथा उन्हें पथभ्रष्ट किया जायेगा।

वर्तमान वातावरण तथा उस परम्परा के कारण जिसको लेकर हमारी न्याय-प्रणाली विकसित हुई है मेरी यह धारणा है कि न्याय बहुत व्यय-साध्य हो गया है। एक गरीब आदमी उसे आसानी से प्राप्त नहीं कर सकता है। यद्यपि आपने कई प्रकार की अपीलों और कई प्रकार की शक्तियों की व्यवस्था की है परन्तु साथ ही बहुत खर्च उठाने पर ही व्यवसायी वकीलों से कानून-सम्बन्धी परामर्श तथा कानून-सम्बन्धी सहायता मिल सकती है। इसका अनुभव उन लोगों को है जिनके मुकदमे बहुत काल तक चलते रहे हैं और वे यह भी जानते हैं कि साधारण लोग इससे कितने भ्रम में पड़ जाते हैं और कितने डरते हैं।

यदि हम यह भी स्वीकार करें कि न्याय अल्प व्यय-साध्य न होना चाहिये और उन लोगों को ही प्राप्त होना चाहिये जो खर्च उठाने के लिये तैयार हों तो कम से कम वह दूषित तो न होना चाहिये और उसे प्रदान करने में मुकदमे के गुण-दोषों के अतिरिक्त अन्य बातों का तो प्रभाव न पड़ना चाहिये।

जब इस सभा के सम्मुख न्यायाधीश-वर्ग विषयक अध्याय उपस्थित किया जायेगा तो मुझे कुछ संशोधनों को उपस्थित करके यह बताने का अवसर मिलेगा कि वर्तमान प्रणाली के क्या दोष हैं। किन्तु हमें न्याय की पवित्रता का आदर्श अपने सम्मुख रखना चाहिये। चाहे वह वर्गीय न्याय ही क्यों न हो परन्तु कम से कम उसमें अन्य बातों का प्रभाव पड़ने का दोष तो न आना चाहिये। न्यायाधीश

अपनी चेतना तथा उत्तर-चेतना से और अपने पूर्वजों से अथवा वर्गीय लोगों से प्राप्त विद्वेष की भावनाओं से प्रभावित रहते हैं। इस दोष को तुरन्त ही दूर नहीं किया जा सकता है। परन्तु यदि हम इसकी ओर ध्यान न दें, और कल सभा में सर्वोच्च न्यायालय से अपील करने के बारे में जो कुछ कहा गया था उसकी ओर ध्यान न दें, तो मैं यह कहूंगा कि जब तक आपके न्यायाधीश-वर्ग और अधिशासी-वर्ग सम्बद्ध रहेंगे और उच्च न्यायपद से उसी प्रकार के उच्च अधिशासी-पद में जाने की सम्भावना बनी रहेगी तब तक न्यायाधीश-वर्ग को सन्देह की दृष्टि से देखा जायेगा और तब तक व्यक्तिगत अधिकारों और व्यक्तिगत आकांक्षाओं से न्याय के प्रशासन को हानि पहुंचती रहेगी ओर तब तक आप अपनी नागरिक स्वतन्त्रताओं की उस सीमा तक और उस पवित्रता से रक्षा न कर सकेंगे जो कि इस देश के लिये आवश्यक है।

इसलिये मेरा पहला सुझाव यह है कि न्यायाधीश-वर्ग को पूर्णतया पृथक् कर दिया जाये और वह केवल कानून की शब्दावली को महत्त्व दे, चाहे विधान निर्माण होते समय सभा में किसी प्रकार की बहस क्यों न हुई हो और चाहे किसी व्यक्ति-विशेष अथवा दल-विशेष की किसी प्रकार के विचार क्यों न हों और चाहे मानवी और पार्थिव बातों के सम्बन्ध में लोगों के किसी प्रकार के उद्देश्य क्यों न हों।

विधान-मण्डल और अधिशासी-वर्ग के सम्बन्ध में भी भिन्न प्रकार से यही तर्क उपस्थित किया जा सकता है। मैं यह निवेदन करने का साहस करता हूं कि इन दोनों के बीच में जितना कम सम्पर्क हो उतना ही दोनों के लिये हितकर होगा। अधिशासी-वर्ग सभा को दूषित कर सकता है, और पदों के सम्बन्ध में मन्त्रिपदों, राजदूतों के पदों और अन्य ऐसे पदों के सम्बन्ध में, जो उसके अधिकार में हों, पक्षपात करके अथवा उन्हें उपहार के रूप में देकर वह सदस्यों के मतों पर प्रभाव डाल सकता है। अब हम राजनैतिक विकास के उस स्तर पर पहुंच गये हैं जब कि किसी देश में भी तथाकथित प्राचीन 'लूट की प्रणाली' का अनुसरण नहीं किया जाता है। परन्तु फिर भी यह होता है कि पचास, साठ, सत्तर अथवा सौ लोगों पर ऐसे लोगों का प्रभाव पड़ता है जिनके हाथ में राज्य के सर्वोच्च पदों को प्रदान करने की शक्ति होती है। उदाहरणार्थ इंग्लैण्ड में पार्लीमेंट के 615 सदस्यों में से लगभग 70 मन्त्रिमण्डल के मन्त्री अथवा पार्लामेण्टरी सेक्रेटरी अथवा अन्य प्रकार के मन्त्री आदि होते हैं। सभा मुझे यह कहने के लिये क्षमा करेगी कि यहां भी मन्त्रियों, राज-मन्त्रियों, उपमन्त्रियों और सम्भवतः आगे चल कर पार्लामेण्टरी सेक्रेटरियों के पदों को स्थापित करके यहां भी हम छोटे पैमाने

[प्रोफेसर के.टी. शाह]

पर यही सब करने का प्रयास कर रहे हैं। यह हो सकता है और मुझे विश्वास है कि यही होता भी है कि सम्मानित लोग देश की सेवा के लिये अपने को समर्पित करने की इच्छा से ही प्रेरित होते हैं। परन्तु फिर भी दलबन्दी की प्रणाली को और अपने ही लोगों के प्रति अथवा उन लोगों के प्रति, जो अनुयायी होने के लिये तैयार हों, पक्षपात करने के विचार को महत्त्व दिया जाता है और केवल इसकी ओर ध्यान नहीं दिया जाता कि किसी पद के लिये किसी व्यक्ति में कितनी योग्यता है और कितनी पात्रता है।

संसदात्मक शासन-प्रणाली में, जैसी कि वह पाश्चात्य देशों में प्रचलित है और जिसका अनुकरण करने का हम प्रयास कर रहे है, नियुक्तियों में महत्त्व इसको दिया जाता है कि यदि अमुक व्यक्ति किसी सरकारी जगह पर रखा जायेगा तो वह कितने लोगों के मतों को प्राप्त कर सकेगा और इसकी ओर ध्यान नहीं दिया जाता कि वह देश की वास्तविक सेवा करने में समर्थ है अथवा नहीं। इस कारण संसदात्मक शासन-प्रणाली की, जिस पर यह विधान आधृत है और जिसमें विधान-मण्डल और अधिशासी-वर्ग सम्बद्ध रहते हैं, मैं निःसंकोच होकर निन्दा करता हूं।

मैं यह जानता हूं कि मेरी ध्वनि केवल अरण्य-रुदन मात्र है। परन्तु मैं इसे अपना कर्त्तव्य समझता हूं कि इसका इस सभा की कार्यवाही के प्रतिवेदन में उल्लेख हो जाये कि अन्य देशों के विधानों के प्रभाव का सावधानी से अध्ययन करने और लगभग तीस वर्ष तक इस देश की राजनैतिक संस्थाओं के विकास तथा लोक-जीवन, लोकाचार तथा व्यक्तिगत व्यवहार पर भी उनके प्रभाव का सावधानी से अध्ययन करने के उपरान्त मैं यह सुझाव उपस्थित करने का साहस करता हूं कि हम किसी अच्छे उदाहरण का अनुकरण नहीं कर रहे हैं और जितनी ही जल्दी हम अधिशासी-वर्ग न्यायाधीश-वर्ग और विधान-मण्डल के परस्पर सम्बन्ध को किसी सर्वोच्च मन्त्रिमण्डल अथवा सर्वोच्च प्राधिकारी को स्थापित करके समाप्त कर देंगे उतना ही हमारे लिये यह श्रेयस्कर होगा।

अन्त में, श्रीमान्, मैं अधिशासी-वर्ग और विधान-मण्डल के पृथक्करण के सम्बन्ध में कुछ कहूंगा। अमेरिका में इनको बिल्कुल पृथक् रखा गया है और वहां के पिछले डेढ़ सौ वर्षों के अनुभव से यह कहा जा सकता है कि यह व्यवस्था पर्याप्त रूप से संतोषप्रद रही है। उनके सामने भी अंग्रेज़ी विधान का आदर्श था और उससे उनको हमसे कहीं अधिक प्रेरणा मिल सकती थी क्योंकि उसमें विधान-मण्डल और अधिशासी-वर्ग का इतना उत्कृष्ट सम्मिलन हो गया था कि बर्क और फाक्स ऐसे विचारक भी इस सम्मिलन को नागरिक स्वतंत्रताओं और अंग्रेज़ी विधान की उदारता का आधार मानते थे।

किन्तु जेफरसन प्रभृति विचारकों ने आखिर ऐसा विधान बनाया जिसमें विधान-मण्डल, अधिशासी-वर्ग और न्यायाधीश-वर्ग को पृथक् ही रखा गया। एक सौ साठ वर्ष से वह विधान अमेरिका में प्रयोग में है और वहां के लोगों को उसके कारण किसी गम्भीर कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा हैं। युद्धकाल और गृहयुद्धकाल में भी वे अपनी स्वतंत्रता और अपने उदार विधान की रक्षा कर सके है। यदि वे उस मार्ग पर चलते जिस पर लगभग एक शताब्दी तक व्हिग लोग चलते रहे और उसी प्रकार अपनी दलबन्दी करते तो सम्भवत: वे इस प्रकार उनकी रक्षा न कर सकते।

बिना पुनरोक्ति के दोष के मैं इस विषय पर और भी बहुत कुछ कह सकता हूं परन्तु मुझे ज्ञात है कि अध्यक्ष महोदय का धैर्य असीम नहीं है और मैं इससे भी परिचित हूं कि सभा की भावना सहानुभूतिपूर्ण नहीं है। इसलिये इतनी बातें कह कर मैं सभा से सिफारिश करता हूं कि इस प्रस्ताव को उस स्वरूप में स्वीकार कर लिया जाये तो स्वरूप उसका इस समय है।

***श्री के. हनुमन्थय्या** (मैसूर): श्रीमान्, इस संशोधन के सम्बन्ध में प्रोफेसर के. टी. शाह ने जो तर्क उपस्थित किया उसे मैंने बहुत आदरपूर्वक सुना। मेरा यह विचार है कि उन्होंने जिस खण्ड को उपस्थित किया है वह इस सभा तथा मसौदा-समिति द्वारा प्रस्तावित विधान के ढांचे से बिल्कुल असंगत है। इस सभा में हमने संसदात्मक शासन-प्रणाली स्वीकार की है और प्रोफेसर शाह ने अपने संशोधन द्वारा प्रधान-मूलक अधिशासी-वर्ग का प्रस्ताव उपस्थित किया है। हम इन दो प्रणालियों के गुण-दोषों पर विचार कर सकते हैं परन्तु हमने यह स्वीकार किया है कि इस देश के लिये संसदात्मक शासन-प्रणाली ही उपयुक्त है और कई कारणों से यह प्रणाली प्रधान-मूलक अधिशासी-वर्ग को प्रणाली से इस देश की दशाओं के लिये अधिक अनुकूल है। मेरे विचार से इस स्वविरोधात्मक वर्गत्रयी को स्थापित करने से शासन के किसी सामंजस्य-युक्त ढांचे का निर्माण करना अधिक लाभप्रद होगा। यदि हम प्रोफेसर शाह के मतानुसार अधिशासी-वर्ग न्यायाधीश-वर्ग और विधान-मण्डल को बिल्कुल पृथक् कर दें तो इन सरकारी विभागों के बीच अवश्य ही कलह उत्पन्न होगा। किसी भी देश अथवा शासन में कलह से शान्ति तथा समुन्नति का हनन ही होता है। कोई भी सरकार अथवा समाज केवल शान्ति होने पर ही सुचारु रूप से कार्य कर सकते हैं और यदि इन सरकारी विभागों को पृथक् अथवा प्रोफेसर शाह के शब्दों में सर्वथा पृथक् किया

[श्री के. हनुमन्थय्या]

गया तो उनके बीच अवश्य ही कलह उत्पन्न होगा। इसलिये मेरा यह कहना है कि किसी भी सरकारी ढांचे में सामंजस्य का होना आवश्यक है और यह त्रिमुखी कलह तो किसी प्रकार भी कल्याणकर नहीं हो सकती है।

इसके अतिरिक्त आजकल कुछ लोगों में यह प्रथा चल पड़ी है कि वे अधिशासी-वर्ग की तो निन्दा करते हैं और न्यायाधीश-वर्ग का ऐसा चित्र उपस्थित करते हैं जैसे वे सदाचार की सजीव मूर्तियां हों। मैं प्रोफेसर शाह और उनकी विचारधारा के लोगों के सम्मुख यह दृष्टिकोण रखना चाहता है कि इसमें सन्देह नहीं कि न्यायाधीश पक्षपातरहित होते है और उनको किसी का पक्ष लेने की आवश्यकता नहीं रहती, परन्तु हमें स्मरण रखना चाहिये कि भारत में तथा संसार के अन्य देशों में अधिशासी-वर्ग को बहुत ही कठिन परिस्थितियों में काम करना होता है। शासन चलाना और साथ ही लोगों को प्रसन्न रखना कोई आसान काम नहीं है। कई बार तो उनके सम्मुख ऐसी कठिन परिस्थितियां उपस्थित रहती हैं कि उनका जीवन ही संकट में रहता है। इस कारण वे लोगों को प्रसन्न नहीं रख सकते हैं। कुछ लोग इन परिस्थितियों से और लोगों की अप्रसन्नता से लाभ उठाने और अधिशासी-वर्ग को निन्दित करने के लिये उत्सुक रहते हैं। अधिशासी-वर्ग और विधान-मण्डल की हमेशा निन्दा करने से और न्यायाधीश-वर्ग की प्रशंसा करने से न न्यायाधीश-वर्ग को लाभ होता है और न सरकार को। यदि मैं इसका आशय ठीक समझ सका हूं तो न्यायाधीश-वर्ग की स्वतंत्रता का अर्थ यह है कि अधिशासन के अधिकारी न्याय के प्रतिदिन के प्रशासन में हस्तक्षेप न करें। जैसी कि कुछ लोगों ने व्याख्या की है। इसका यह अर्थ नहीं है कि न्यायाधीश अधिशासन के अधिकारियों के प्रभु हैं अथवा उन्हीं के समान हैं। किसी भी देश की सरकार को शासन ही करना होता है। शासन की शक्ति कुछ लोगों के हाथ में होनी चाहिये और उसे तीन बराबर भागों में विभाजित करना विशेषतया उस प्रकार जैसे प्रोफेसर के.टी. शाह चाहते हैं, संकट से खाली न होगा। अमेरिका में भी यद्यपि सैद्धान्तिक रूप से इन विभागों की शक्तियां बिल्कुल पृथक् हैं किन्तु यह सभी जानते हैं कि जो दल पदारूढ़ रहता है वह इस व्यवस्था से उत्पन्न होने वाली कठोरता को बहुत कम कर देता है। अमेरिका में दो सुसंगठित दल हैं और ये दल अपनी बैठकों में अपने कार्यक्रमों को निश्चित करते हैं। इन बैठकों में इस व्यवस्था से इन तीन सरकारी विभागों के बीच उत्पन्न होने वाली कठोरता को कम करने और मतभेद को मिटाने का प्रयास किया जाता है जिससे इस प्रणाली के दोषों का निराकरण हो जाता है। कभी-कभी जब किसी दल का विधान-मण्डल में बहुमत होता है और दूसरे दल का अधिशासी-वर्ग में बहुमत होता है तो अवश्य

ही कलह उठ खड़ा होता है। न्यायाधीश-वर्ग को पक्षपातरहित बनाने के लिये हमारे लिये यह आवश्यक नहीं है कि हम उसका पद उतना ही ऊंचा बनायें जितना कि सरकार का अथवा विधान-मण्डल का। यह तर्क ठीक नहीं है कि सर्वोच्च न्यायालय के कुछ न्यायाधीश विधान-मण्डल के चार सौ सदस्यों से कहीं अच्छे होते है, जो यथोचित निर्वाचन द्वारा चुने हुये लोक-प्रतिनिधि होते हैं और राष्ट्र के विश्वास प्राप्त नेता होते है। यह एक उल्टा तर्क है। राजनैतिक विवाद से उत्पन्न इस मनोवृत्ति को जितनी जल्दी हम छोड़ दें उतना अच्छा। इसलिये मैं इस नवीन खण्ड का विरोध करता हूं। इसका मुख्य कारण यह है कि इस सभा ने जनतंत्र की संसदात्मक शासन-प्रणाली को स्वीकार किया है और इस वैधानिक ढांचे में यह नवीन खण्ड बेमेल लगता है।

***प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान, मैं अपने मित्र श्री हनुमन्थय्या के इस विचार से सहमत हूं कि इस संशोधन में यह खण्ड जिस रूप में रखा गया है उस रूप में वह विधान में समुचित स्थान नहीं पा सकता है। परन्तु मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि मैं अपने विद्वान् मित्र प्रोफेसर के.टी. शाह के तर्क से बहुत कुछ सहमत हूं। हमने कई वर्षों से संसदात्मक जनतंत्र का प्रयोग किया है। डॉ. अम्बेडकर ने अपने मूल भाषण में हमसे स्पष्ट शब्दों में यह कहा था कि हमने ब्रिटेन की प्रणाली और अमेरिका की प्रणाली में से किसी एक को चुनना है और यह भी कहा था कि जहां अमेरिका की प्रणाली से अधिक सुरक्षा प्राप्त हो सकती है तो ब्रिटेन की प्रणाली से अधिक जिम्मेदारी प्राप्त हो सकती है और हमने यहां अधिक जिम्मेदारी को स्वीकार करने का निश्चय किया था परन्तु मेरे विचार से यदि उन्हें इन दो प्रणालियों में से किसी एक को चुनने की स्वतंत्रता दी जाती तो वे अमेरिका की प्रणाली को पसन्द करते। वर्तमान संसदात्मक प्रणाली के जो दोष हैं उनको मैं बहुत अंश में स्वीकार करता हूं। हमने सिंध, बंगाल और अन्य प्रान्तों में संसदात्मक दलबन्दी को देखा है, जहां मंत्रिमण्डल बहुसंख्यक दल को बनाये रखने के लिये उन लोगों को भी घूस देते रहे हैं जिनके हाथ में केवल चार या पांच मत भी थे। मेरी यह धारणा है कि इस प्रणाली का, जिसके अधीन लोगों को केवल बहुसंख्यक दल को बनाये रखना होता है, दुरुपयोग किया जा रहा है। मैं यह जानता हूं कि इंग्लैण्ड में इस प्रणाली को बहुत ही उपयुक्त ढंग से प्रयोग में लाया जा रहा है। किन्तु उनकी 700 वर्ष प्राचीन परम्परा है। उन्होंने अपनी कार्यप्रणाली का विकास किया है किन्तु हमने अभी-अभी जनतंत्रात्मक स्वातंत्र्य प्राप्त किया है और इसलिये हम उनकी पूर्ण रूप से नकल नहीं कर सकते हैं। यह हम तभी कर सकते है जब हमारे सारे राष्ट्र का स्वरूप बदल जाये।

[प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना]

इस समय हमारे लिये इंग्लैण्ड की नकल करना सम्भव नहीं है। सम्भवत: अपने दासत्व के कारण ही हमने ब्रिटिश प्रणाली की नकल की है। यदि हमें इस सम्बन्ध में स्वतंत्रता होती तो हम अमेरिका की प्रणाली की नकल करते। उस प्रणाली के अन्तर्गत न्यायाधीश-वर्ग और विधान-मण्डल बिल्कुल पृथक् हैं और विधान-मण्डल तथा अधिशासी-वर्ग भी बिल्कुल पृथक् हैं। वहां विधान-मण्डल देश के लिये जिन कानूनों को भी लाभप्रद समझता है, बनाता है, और प्रधान को उसकी बात माननी होती है। यहां बहुसंख्यक दल के नेता को सभा का सहयोग प्राप्त होना चाहिये। सभा उन्हीं कानूनों को स्वीकार करती है जिन्हें दल आवश्यक समझता है। विधान-मण्डल अधिशासी-वर्ग के अधीन होता है और वह स्वाधीन नहीं होता है। अधिकतर सभी जगहों में जहां नेता ख्यातनामा होते हैं दल उनकी हां में हां मिलाते हैं और बहुसंख्यकों की वास्तविक इच्छा व्यक्त नहीं हो पाती। इसलिये मेरे विचार से सारा शासन केवल एक-व्यक्ति शासन का रूप धारण कर लेता है। अमेरिका में लोग स्वतंत्र हैं। वे ऐसे कानून भी बना सकते हैं जो प्रधान के विरुद्ध हों। कई बार विधान-मण्डल अथवा कांग्रेस के कुछ कानूनों को स्वीकार करने पर भी वहां सर्वोच्च न्यायालय में उनका शून्यन कर दिया। साथ ही प्रधान को भी बराबर यह देखते रहना होता है कि उसका कोई कार्य आधारभूत न्याय-सम्बन्धी कानूनों के विरुद्ध तो नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय वहां सबसे अधिक शक्तिसम्पन्न है। किन्तु मेरे विचार से हम बहुत आगे बढ़ गये हैं और अब विधान के आधार को बदलना सम्भव नहीं है क्योंकि पिछले दो वर्षों में हमने सभी बातें ब्रिटिश-विधान के अनुसार ही रखी हैं और अब सारी प्रणाली को बदलने का समय नहीं रह गया है। परन्तु मेरी यह धारणा है कि प्रोफेसर शाह के तर्क में बहुत बल है। निस्संदेह यह संशोधन इस स्थान पर उपयुक्त नहीं है किन्तु इस सभा को यह ध्यान में रखना चाहिये कि यद्यपि हम पूर्णतया उस प्रणाली के पक्ष में हैं जिसका प्रयोग इंग्लैण्ड में किया गया है और जो वहां संतोषजनक रूप से व्यवहार में है किन्तु फिर भी हमें अपने देश में ऐसी बातों का विकास करना है जिससे उस प्रकार का विधान सुचारु रूप से व्यवहार में आ सकता है। इंग्लैण्ड में यद्यपि चर्चिल ने अपने देश की तथा उसकी स्वतंत्रता की रक्षा की थी परन्तु नये निर्वाचन में उसे अलग कर दिया गया। क्या हमारे देश में ऐसी व्यवस्था है कि हम जिस किसी व्यक्ति को अच्छा न समझें उसे अलग कर सकते हैं? हमारे देश के लिये जो कुछ आवश्यक हो उसे हमें करना ही चाहिये, भले ही वह बड़े से बड़े आदमी की इच्छा के विरुद्ध क्यों न हो। जब तक यह स्थिति न उत्पन्न

हो जाये हम संसदात्मक जनतंत्र को व्यवहार में नहीं ला सकते हैं। इसलिये मेरे विचार से इस संशोधन द्वारा इस सभा को यह संदेह प्रकट करने का अवसर मिला है कि हमने वर्तमान प्रणाली को स्वीकार करके बुद्धिमत्ता का परिचय दिया है अथवा नहीं। परन्तु मेरे विचार से अब सारी प्रणाली को बदलने का समय नहीं रह गया है और इसलिये अब यह संशोधन समयानुकूल नहीं है। इसका उद्देश्य तो वास्तव में यह होना चाहिये था कि सारी प्रणाली को ही बदला जाये। फिर भी मेरे विचार से जहां तक सर्वोच्च न्यायालय का सम्बन्ध है, मेरी यह इच्छा है कि वह किसी एक व्यक्ति द्वारा नियुक्त न किया जाये बल्कि विधान-मण्डल के बहुमत द्वारा नियुक्त किया जाये। सभी क्षेत्रों में उसकी स्वाधीनता की प्रत्याभूति होनी चाहिये। मैंने इस आशय के संशोधनों की सूचना दी है कि सर्वोच्च न्यायालय किसी प्रकार भी न्यायाधीश-वर्ग और विधान-मण्डल के अधीन न होना चाहिये। इसी संस्था को यह निर्णय करने का अधिकार होना चाहिये कि हमारी स्वतंत्रता आदि के सम्बन्ध में किन बातों की प्रत्याभूति दी गई है। मुझे आशा है कि इस संशोधन द्वारा हम कम से कम यह समझने में समर्थ होंगे कि सर्वोच्च न्यायालय की स्वतंत्रता किसी प्रकार भी सीमित न की जानी चाहिये। इस सम्बन्ध में मैंने इस सभा में एक उच्च अधिकारी को यह कहते हुये सुना कि इस समय उच्च न्यायालय स्वाधीन नहीं है। और अपने कार्यों के राजनैतिक परिणाम से वे प्रभावित होते हैं।

मुझे आशा है कि भविष्य में हमारा सर्वोच्च न्यायालय इन प्रभावों से मुक्त होगा और वह वही कार्य करेगा जो आवश्यक हो तथा इस विधान में सन्निहित सिद्धांतों का अनुसरण करेगा।

***काज़ी सय्यद करीमुद्दीन** (मध्यप्रान्त और बरार : मुस्लिम): श्रीमान्, मैं प्रो. के. टी. शाह के संशोधन से पूर्णतया सहमत हूं। मैं यह जानता हूं कि विधान-परिषद् ने संसदात्मक शासन-प्रणाली को स्वीकार किया है, परन्तु जिस समय यह किया गया था उस समय भी मैंने भारत के लिये असंसदात्मक शासन-प्रणाली को अपनाने के लिये अनुरोध किया था। हम सन् 1920 ई. से देखते आ रहे है कि संसदात्मक शासन-प्रणाली के आधार पर भारत सरकार के कानून और प्रान्तीय सरकारों के कानूनों के प्रयोग में आने पर केवल असफलता का ही सामना करना पड़ा है। यह स्पष्ट है कि संसदात्मक शासन-प्रणाली के अधीन राजनैतिक क्षेत्र में विरोधियों को या तो कुचल दिया जाता है या उनकी उपेक्षा की जाती है। हमारे यहां न पहले से प्रचलित प्रथायें हैं और न अनुशासन

[काजी सय्यद करीमुद्दीन]

ही और हमारे लोगों को संसदात्मक प्रणाली के कार्य का अभ्यास न होने के कारण वे विरोध को सहन नहीं कर सकते हैं। हमने भारत में यह देखा है कि मंत्री विधान-मण्डलों के दास होते हैं और उन्हें अपने अस्तित्व को तथा अपने पदों को बनाये रखने के लिये देशवासियों के विचारों पर निर्भर रहना पड़ता है। उनको अपनी बुद्धि तथा विवेक से काम लेने की स्वतंत्रता नहीं होती और इसका परिणाम यह होता है कि जो लोग उन्हें पदारूढ़ रखते हैं वे उनकी बुद्धि और विवेक को भी प्रभावित करते हैं और इससे उनके विरोधियों का बहुत अहित होता है। इस देश में विभिन्न प्रकार के लोग हैं। उनके विभिन्न सिद्धान्त हैं और विभिन्न कार्यक्रम। हमने देखा है कि देश में विशेषतया नोआखाली, बिहार और दोनों पंजाबों में किस प्रकार लूटमार हुई। यह इसी कारण हुआ कि वहां की सरकारें संसदात्मक प्रणाली पर आधृत थीं। दोनों पंजाबों, नोआखाली और बिहार में मन्त्री सख्त कार्यवाही बहुत कुछ इसलिये नहीं कर सके कि वे इन प्रदेशों के लोगों की उत्तेजनापूर्ण भावना का विरोध नहीं कर सकते थे। इसलिये यदि आप देश में शान्ति चाहते हैं और विरोधी राजनैतिक दलों को मिटा ही देना नहीं चाहते हैं तो यह अत्यन्त आवश्यक है कि किसी असंसदात्मक शासन-प्रणाली का अनुसरण किया जाये।

इस सभा में यह बहुत अंश में स्वीकार कर लिया गया है कि संसदात्मक शासन-प्रणाली के अधीन न्यायाधीश-वर्ग यहां कभी भी स्वतंत्र न होगा। यदि उसे स्वतंत्र न बनाया गया तो वैयक्तिक स्वातंत्र्य तथा वैयक्तिक सम्पत्ति सम्बन्धी मूलाधिकार की प्रत्याभूति उपहासास्पद ही सिद्ध होगी। जब तक न्यायाधीश-वर्ग स्वतंत्र न हो और अधिशासी-वर्ग तथा विधान-मण्डल से पृथक् न हो तब तक मूलाधिकारों के आधार पर रक्षा प्राप्त करना और स्वतंत्र विचार के आधार पर निर्णय करना सम्भव न हो सकेगा।

मद्रास के मेरे मित्र ने इस संशोधन का विरोध करते हुये तीन कारण बताये। उन्होंने यह कहा कि असंसदात्मक शासन-प्रणाली के अन्तर्गत कोई ऐसी सामंजस्यपूर्ण व्यवस्था नहीं की जा सकती जिसके अधीन राजनैतिक दल एक साथ काम कर सकते हैं। मेरा यह निवेदन है कि संसदात्मक शासन-प्रणाली के अधीन कोई सामंजस्यपूर्ण व्यवस्था नहीं स्थापित होती है किन्तु एक ऐसी व्यवस्था स्थापित होती है जिसमें राजनैतिक विरोधी कुचल दिये जाते हैं। सामंजस्यपूर्ण व्यवस्था वह है जिसमें सभी दल एक साथ सामंजस्य से काम कर सकते हैं और विरोधी दल को भी यथोचित स्थान दिया जाता है। इसलिये यह नहीं कहा जा सकता है कि संसदात्मक शासन-प्रणाली के अधीन, जब कि न अनुशासन रहता है और न सहिष्णुता, कोई व्यक्ति सामंजस्यपूर्ण व्यवस्था की आशा कर सकता है।

इसके अतिरिक्त, श्रीमान्, यह भी कहा गया था कि यदि असंसदात्मक शासन प्रणाली का अनुसरण किया गया तो विधान-मण्डल, अधिशासी-वर्ग और न्यायाधीश-वर्ग के बीच बहुत कलह होगी। मेरा यह निवेदन है कि यदि न्यायाधीश-वर्ग को अधिशासी-वर्ग से पृथक् किया गया और वह विधान-मण्डल की ज्यादतियों से सहमत न हो तो इससे भलाई ही होगी। यह किसी भी जनतंत्रात्मक राज्य में एक अच्छा लक्षण समझा जा सकता है। इसके अतिरिक्त यह कहा गया था कि मन्त्रिमण्डल और अधिशासी-वर्ग को लोगों को प्रसन्न रखना होता है। वास्तव में इसी कारण हम असंसदात्मक शासन-प्रणाली को चाहते हैं। हम विधान-मण्डल, अधिशासी-वर्ग और न्यायाधीश-वर्ग को पृथक् इसीलिये करना चाहते हैं कि लोगों को प्रसन्न करने में वे ऐसी ज्यादतियां कर बैठते हैं कि उनके विरोधियों के या तो प्राण ही ले लिये जाते हैं या उनको कुचल दिया जाता है अथवा उनकी उपेक्षा की जाती है। इसलिये मेरा यह कहना है कि मद्रास के मेरे माननीय मित्र ने संसदात्मक शासन-प्रणाली के पक्ष में जो तर्क उपस्थित किया है वह उनके विरुद्ध ही जाता हैं। हम एक ऐसी शासन-प्रणाली चाहते हैं जिसमें समर्थकों को प्रसन्न करने की कम से कम आवश्यकता हो। यह एक मिथ्या कथन है कि केवल इंग्लैण्ड की ही शासन-प्रणाली जनतंत्र पर आधृत है। अमेरिका की शासन-प्रणाली के समान अन्य शासन प्रणालियां भी जनतंत्र पर आ यह नहीं कहा जा सकता कि अमेरिका की प्रणाली जनतंत्र पर आधृत नहीं है। यदि आप चाहते हैं कि शासन स्थिर और शक्तिशाली हो और यदि आप वास्तव में चाहते हैं कि साम्प्रदायिकता विनष्ट हो जाये तो आपको ऐसा वातावरण उत्पन्न करना चाहिये जिसमें लोगों की उत्तेजना के लिये कोई स्थान न हो और जिसमें राजनैतिक विरोध सहिष्णुता की दृष्टि से देखा जाये। हम ऐसी सरकारें और मन्त्रिमण्डल नहीं चाहते जो अस्थिर हो और जिन्हें पदारूढ़ रहने के लिये सदैव समर्थकों को प्रसन्न रखने की आवश्यकता हो। इसलिये मैं प्रोफेसर के. टी. शाह द्वारा उपस्थित संशोधन का पूरी शक्ति से समर्थन करता हूं।

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, इसमें कोई सन्देह नहीं है कि प्रोफेसर शाह ने एक ऐसा प्रश्न उठाया है जिसका बहुत वैधानिक महत्त्व है। दुर्भाग्य से उन्होंने कुछ देर कर दी है। यह सभा इस प्रश्न पर विचार कर चुकी है और वह संसदात्मक शासन-प्रणाली के पक्ष में निर्णय कर चुकी है। उसी निर्णय के आधार पर मसौदा-समिति ने सारे विधान का मसौदा बनाया है। इसलिये यदि अधिकांश सदस्यों के मत में क्रान्तिपूर्ण परिवर्तन नहीं हो गया है तो प्रोफेसर शाह के प्रस्ताव को इस समय व्यावहारिक नहीं कहा जा

[माननीय श्री के. सन्तानम्]

सकता है। इसलिये मैं प्रधानमूलक तथा संसदात्मक अधिशासी-वर्ग के प्रश्न की विस्तृत व्याख्या नहीं करना चाहता। श्रीमान्, यह बहुत अंश में एक मिथ्या बात है कि अमेरिका के विधान में भी विधान-मण्डल, अधिशासी-वर्ग और न्यायाधीश-वर्ग पूर्णतया अलग-अलग हैं। यद्यपि यह कहा जाता है कि संयुक्त राज्य अमेरिका का सर्वोच्च न्यायालय अधिशासी-वर्ग से पूर्णतया पृथक् है परन्तु हमने देखा है कि एक प्रधान के बाद दूसरे प्रधान ने किस प्रकार अपनी विचारधारा के न्यायाधीशों को नियुक्त करके सर्वोच्च न्यायालय को अपने ढंग का बनाने का प्रयास किया है। जब कभी सर्वोच्च न्यायालय और प्रधान के बीच कलह हुआ है तो प्रधान को केवल उस समय की प्रतीक्षा करनी पड़ी है जब किसी न्यायाधीश ने अवकाश ग्रहण किया है। ऐसा होने पर वह अपने किसी आदमी को मनोनीत करता रहा है और फिर सभी निर्णय उसी के पक्ष में होते रहे हैं। इसलिये जब तक नियुक्ति के सम्बन्ध में सर्वोच्च अधिकारी प्रधान ही है उस समय तक न्यायाधीश-वर्ग का अधिकार कुछ सीमा तक अधिशासी-वर्ग पर निर्भर रहता है। परन्तु जहां तक हमारे विधान का सम्बन्ध है, उसमें यह प्रावहित है कि हमारा सर्वोच्च न्यायालय, अधिशासी-वर्ग और विधान-मण्डल से उसी प्रकार पृथक् होगा जैसे कि संयुक्त राज्य अमेरिका का सर्वोच्च न्यायालय। विधान में इस सीमा तक प्रोफेसर शाह की इच्छा पूर्ण हो गई है।

***प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना:** वहां न्यायाधीश कांग्रेस और सीनेट द्वारा नियुक्त होते हैं।

माननीय श्री के. सन्तानम्: कहां?

प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना: संयुक्त राज्य अमेरिका में।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** परन्तु प्रधान ही को उन्हें मनोनीत करना होता है।

***प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना:** परन्तु उन्हें सीनेट की सहमति प्राप्त करनी होती है।

***माननीय श्री के. सन्तानम:** जी हां, चाहे सीनेट की सहमति ली जाये अथवा नहीं नियुक्ति करने वाला अधिकारी प्रधान ही है। इसलिये प्रधान अपने मनोनीत किये हुये व्यक्ति को ही पसन्द करेगा और चाहे कितने ही उम्मीदवार हों वह केवल उन व्यक्तियों को मनोनीत करेगा जो उसकी विचारधारा का,

विशेषतया महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के सम्बन्ध में, समर्थन करेंगे। यदि नियुक्त करने वाले अधिकारी को छोड़ दिया जाये तो जहां तक न्यायाधीश-वर्ग के स्वतंत्र होने का सम्बन्ध है, हमने अपने विधान में जिस स्वतंत्रता की व्यवस्था की है, वह किसी अन्य विधान में प्रावहित स्वतंत्रता से कम नहीं है। इसलिये वास्तविक प्रश्न यह है कि प्रधानमूलक और संसदात्मक अधिशासी-वर्गों में से कौन अधिक श्रेयस्कर है। श्रीमान्, दो-तीन वर्ष पूर्व मेरी भी यह प्रबल धारणा थी कि भारत की केन्द्रीय सरकार के लिये प्रधान-मूलक अधिशासी-वर्ग ही सबसे अधिक उपयुक्त है, परन्तु इस सभा के विचार-विमर्श को सुन कर तथा स्वयं भी अधिक विचार करने पर मैं इस निर्णय पर पहुंचा हूं कि वह प्रणाली देश के लिये सम्भवत: उतनी हितकर नहीं है जितनी मैं उसे पहले समझता था क्योंकि, श्रीमान्, भविष्य में इस देश में राज्य आर्थिक क्षेत्र में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाग लेने वाला है। यदि यहां राज्य का काम केवल शांति की व्यवस्था करना ही रहता तो अधिशासी-वर्ग और विधान-मंडल का अलग किया जाना बहुत महत्त्व रखता। यदि विधान का निर्माण करते समय केवल शक्ति और स्थैर्य को ही अथवा मुख्यत: इन्हीं को ध्यान में रखना है तो मेरे विचार से प्रधानमूलक अधिशासी-वर्ग का महत्त्व बहुत बढ़ जाता है परन्तु आज तो शक्ति और स्थैर्य से अधिक महत्त्व दिनोंदिन आगे बढ़ने वाली आर्थिक उन्नति का है। हमारा स्थैर्य और हमारी शक्ति भी उस दशा के अधीन रहेगी जिसमें भारत का आर्थिक पुनर्निर्माण किया जा सकता है। मुझे विश्वास है कि प्रोफेसर के. टी. शाह को इसकी बहुत चिंता है कि भारत का समाजवाद के आधार पर शीघ्रातिशीघ्र पुनर्निर्माण किया जाये। परन्तु यदि प्रधानमूलक अधिशासी-वर्ग रहेगा तो मेरे विचार से इस सम्बन्ध में उनकी इच्छाओं की पूर्ति के मार्ग में बहुत बाधा पड़ेगी। प्रधानमूलक-प्रणाली का एक दोष यह है कि अधिशासी-वर्ग और विधान-मण्डल का प्राय: कलह होता रहता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में यह होता आया है। उनके बीच यह कलह तीन या चार वर्ष तक अथवा उस समय तक चलता रहता है जब तक कि नया विधान-मण्डल न बन जाये अथवा प्रधान का नया चुनाव न हो जाये। श्रीमान्, मेरे विचार से हम इस देश में तीन या चार वर्ष का समय इस प्रकार के कलहों में नष्ट नहीं कर सकते। यदि थोड़े समय के लिये भी इस प्रकार का कलह हुआ तो वे सब लाभ मिट्टी में मिल जायेंगे जो प्रधान को स्वतंत्र सत्ता देने तथा अधिशासी-वर्ग की स्थिरता से होते। श्रीमान्, हमने बहुत से उद्योगों का समाजीकरण करना है, नये नियमों को स्थापित करना है और रुपया उधार देने या लेने के नये तरीके अपनाने हैं। इन सब बातों के लिये

[माननीय श्री के. सन्तानम्]

अधिशासी-वर्ग और विधान-मण्डल का प्रतिदिन का सहयोग बहुत महत्त्व रखता है। जब तक और कम से कम भारतीय स्वातंत्र्य के उदय-काल में, इस प्रकार का सहयोग न होगा तो हमारी उन्नति, जो विदेशी शासन के कारण अभी तक अवरुद्ध रही है, और भी अधिक विलम्बित हो जायेगी और आर्थिक पुनर्निर्माण में जो विलम्ब होगा उससे लोगों का अधैर्य सभी सीमाओं का उल्लंघन कर जायेगा और सुव्यवस्थित जनतंत्र की स्थापना असम्भव हो जायेगी। इसलिये, श्रीमान्, चूंकि केन्द्रीय सरकार को इतनी शक्तियां दी जा रही है जिनकी मैंने आशा भी न की थी और चूंकि हमारे शासन का स्वरूप संघीय से अधिक एकात्मक है इसलिये यह और भी आवश्यक है कि केन्द्र में संसद् और अधिशासी-वर्ग एक ही शरीर के अंग हों और एक ही इकाई के रूप में काम करें। जब तक वे ऐसा न करेंगे देश की सारी उन्नति अवरुद्ध हो जायेगी। यदि हमने प्रान्तीय स्वायत्त-शासन पर अधिक विश्वास किया होता और सभी रचनात्मक कार्यक्रमों और आर्थिक पुनर्निर्माण को प्रदेशों पर छोड़ दिया होता तो मैं प्रान्तों में उत्तरदायी शासन और केन्द्र में प्रधान-मूलक अधिशासी-वर्ग का पक्ष लेता, क्योंकि इस दशा में केन्द्र का कर्त्तव्य केवल यह रह जाता कि वह देश की रक्षा करे और देश की एकता को अक्षुण्ण बनाये रखे और प्रदेशों को आर्थिक क्षेत्र में स्वतंत्र रूप से कार्य करने दे। परन्तु कई प्रबल कारणों से श्रेयस्कर यह समझा गया है कि देश के आर्थिक पुनर्निर्माण को उत्तरोत्तर समुन्नत करने के लिये भारत की केन्द्रीय सरकार सक्रिय भाग ले। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उत्तरदायी मन्त्रिमण्डल अथवा संसदात्मक अधिशासी-वर्ग पर्याप्त होगा। इसलिये मुझे आशा है कि प्रोफेसर के. टी. शाह अपने दृष्टिकोण पर फिर विचार करेंगे और अपने संशोधन को वापस ले लेंगे। पर हर हालत में, मैं तो इस संशोधन के विरोध में हूं।

*__उपाध्यक्षः__ मैं जानता हूं कि अब भी कई ऐसे सदस्य बोलना चाहते हैं जिनका इस विषय पर अधिकार है परन्तु मेरे विचार से इस पर अब पर्याप्त विचार-विमर्श हो चुका है। इसलिये अब मैं डॉ. अम्बेडकर से बोलने के लिये कहता हूं। मुझे खेद है कि मैं माननीय सदस्यों को इस अवसर से वंचित कर रहा हूं, परन्तु मेरे विचार से वे इसे स्वीकार करेंगे कि आखिर हमने प्रतिदिन कुछ काम आगे बढ़ाना है।

*__श्री लोकनाथ मिश्र__ (उड़ीसा : जनरल): किन्तु कई बातों पर प्रकाश नहीं डाला गया है।

*__उपाध्यक्षः__ डॉ. अम्बेडकर!

***माननीय डॉ. बी. आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, माननीय सदस्यों को स्मरण होगा कि जिस समय हमने निदेशक सिद्धान्त-सम्बन्धी अनुच्छेदों पर विचार-विमर्श करके स्वीकार किया था उस समय इस विषय पर लम्बी बहस हुई थी। मेरे ही प्रस्ताव पर निदेशक सिद्धान्तों में अधिशासी-वर्ग और न्यायाधीश-वर्ग के अलग करने के सम्बन्ध में एक प्रावधान को समाविष्ट करने का प्रयास किया गया था। आरम्भ में इस सम्बन्ध में तीन वर्ष की काल-सीमा रखी गई थी। बाद को विचार-विमर्श होने पर और इस सिद्धान्त को व्यवहार में लाने में जो कठिनाइयां होंगी उन्हें समझ कर सभा ने यह निर्णय किया था कि यह काल-सीमा हटा दी जाये और प्रान्तीय सरकारों को निर्देश करने के लिये यह प्रावधान रखा था कि वे अधिशासी-वर्ग और न्यायाधीश-वर्ग के अलग करने के लिये आवश्यक कार्यवाही करें। उस अवसर पर इस पूरे विषय पर विचार-विमर्श हुआ था और मुझे इसकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती कि उस समय मैंने जो कुछ कहा था उसे मैं फिर दुहराऊं। इस सम्बन्ध में कोई विवाद नहीं है कि अधिशासी-वर्ग को न्यायाधीश-वर्ग से पृथक् रखा जाये।

जहां तक अधिशासी-वर्ग को विधान-मण्डल से पृथक् करने का प्रश्न है यह सच है कि संयुक्त राज्य अमेरिका के विधान में इस प्रकार के पृथक्करण की व्यवस्था है। परन्तु यदि मेरे मित्र प्रोफेसर शाह ने अमेरिका के विधान के इस विशेष प्रावधान की हाल में की हुई आलोचना को पढ़ा होता तो उनको विदित होता कि बहुत से अमेरिकन ही अमेरिका के विधान में अधिशासी-वर्ग और न्यायाधीश-वर्ग के पूरे पृथक्करण से बहुत असंतुष्ट हैं। अमेरिका के विधान के बहुत से अध्येताओं ने एक प्रस्ताव यह भी किया है कि अधिशासी-वर्ग और न्यायाधीश-वर्ग के पृथक्करण का बिल्कुल ही निराकरण कर दिया जाये ताकि अमेरिका में उसी प्रकार की स्थिति उत्पन्न हो जाये जैसे कि उदाहरणार्थ इंग्लैण्ड में है। इंग्लैण्ड में अधिशासी-वर्ग और विधान-मण्डल के बीच कोई अन्तर अथवा पृथक्करण नहीं है। यह मत प्रतिपादित किया गया है कि अमेरिका के विधान में कोई ऐसा प्रावधान रखा जाये जिसके अधीन अधिशासी-वर्ग के सदस्य प्रति-निधि-सभा अथवा सीनेट में बैठ सकें। चाहे वे विधान-मण्डल के सभी कार्यों में, जैसे मतदान इत्यादि में, भाग न लें परन्तु वे वहां बैठें, प्रश्नों का उत्तर दें और जिस किसी विषय पर कानूनी बहस हो रही हो उसमें भाग लें। इसे ध्यान में रखते हुये यह कहा जा सकता है कि अमेरिकन लोगों को ही इस सम्बन्ध में बहुत सन्देह है कि अधिशासी-वर्ग और विधान-मण्डल के पूर्णतया पृथक्करण से लाभ हो सकता है अथवा नहीं। मुझे तथा राजनीति-विज्ञान के अध्येताओं को इस सम्बन्ध

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

में बिल्कुल भी सन्देह नहीं है कि संसद् का कार्य बहुत जटिल तथा बहुत अधिक होगा और जब तक अधिशासी-वर्ग के लोग संसद् में बैठ कर सदस्यों का पथ-प्रदर्शन न करेंगे तब तक सदस्यों के लिये उसका काम चलाना कठिन हो जायेगा। किसी कानूनी विषय पर विचार-विमर्श में संसद् के सदस्यों के साथ अधिशासी-वर्ग के सदस्यों के भी भाग लेने से निस्संदेह यह लाभ होता है कि जटिल विषयों के सम्बन्ध में संसद् के सदस्यों का पथप्रदर्शन होता है। इसलिये मेरा अपना यह विचार है कि यदि हम अधिशासी-वर्ग और विधान-मण्डल को पृथक् करने की अमेरिका की प्रणाली का अनुसरण न करें तो इससे किसी प्रकार के अहित होने की सम्भावना नहीं है।

अधिशासी-वर्ग और न्यायाधीश-वर्ग के पृथक्करण के प्रश्न के सम्बन्ध में मैं कह चुका हूं कि इस सम्बन्ध में कोई मतभेद नहीं है और मेरी समझ से यह प्रश्न प्रधानमूलक प्रणाली अथवा संसदात्मक प्रणाली पर निर्भर नहीं है, क्योंकि इसे सभी स्वीकार करते हैं कि संसदात्मक प्रणाली में भी अधिशासी-वर्ग और न्यायाधीश-वर्ग का प्रथक्करण हो सकता है। निदेशक सिद्धान्त सम्बन्धी जिस अनुच्छेद को हमने स्वीकार किया है उसमें भी हमने इस व्यवस्था को स्वीकार किया है। इसलिये मेरे विचार से मेरे लिये यह सम्भव नहीं है कि मैं इस संशोधन को स्वीकार करूं।

***उपाध्यक्षः** अब मैं प्रोफेसर के.टी. शाह के संशोधन पर मत लूंगा।

***प्रोफेसर के.टी. शाहः** श्रीमान्, क्या मैं उत्तर के रूप में कुछ शब्द कह सकता हूं। यह एक नया अनुच्छेद है और कोई संशोधन नहीं है।

***उपाध्यक्षः** यह एक अनुच्छेद हो सकता है, परन्तु है तो यह विधान के मसौदे में संशोधन ही। इससे बहुत कठिन स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। हमने बहुत कठिनाई तय करके एक प्रणाली स्वीकार की है और मुझे विश्वास है कि प्रोफेसर शाह अध्यक्ष की कठिनाइयों पर विचार करेंगे।

(प्रोफेसर शाह अपनी जगह पर बैठ गये।)

***उपाध्यक्षः** धन्यवाद। आप बहुत ही तर्कप्रिय और सहयोगप्रिय हैं।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 40 के बाद निम्नलिखित नया अनुच्छेद प्रविष्ट किया जाये:

'40-A. There shall be complete separation of powers as between the principal organs of the State, *viz.,* the Legislative, the Executive and the Judicial.'"

(40-क. राज्य के मुख्य अंगों की अर्थात् विधान-मण्डल की, अधिशासी-वर्ग की और न्यायाधीश-वर्ग की शक्तियां बिल्कुल पृथक् होंगी।)

प्रस्ताव गिर गया।

***उपाध्यक्ष:** जहां तक मुझे स्मरण है हमारा कार्य संशोधन संख्या 1033 से आरम्भ होता है। यह रस्मी होने के कारण उपस्थित नहीं किया जा सकता है।

मेरे विचार से संशोधन संख्या 1034 इस कारण उपस्थित नहीं किया जा सकता है कि सभा एक नये अनुच्छेद 39-क को स्वीकार कर चुकी है।

अब हम अनुच्छेद 41 पर आते हैं।

अनुच्छेद 41

***उपाध्यक्ष:** प्रत्येक संशोधन को पढ़ने से मुझे यह ज्ञात होता है कि संशोधन संख्या 1037, 1038 और 1039 मुख्यत: हमारी मातृभूति के नाम के सम्बन्ध में हैं। मेरे विचार से उन्हें इस समय स्थगित रखना चाहिये। इनका सम्बन्ध अनुच्छेद 1 से है जिस पर हमने बाद को विचार-विमर्श करने का निश्चय किया है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या आपका यह निर्णय है कि इन संशोधनों का इन अनुच्छेदों से कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि आप इन्हें स्थगित रखने का निश्चय करते हैं तो हम सम्बन्धित अनुच्छेद को स्वीकार नहीं कर सकते हैं।

***उपाध्यक्ष:** आप इन कानूनी बातों के पण्डित हैं। क्या हम किसी प्रकार इनका सम्बन्ध अनुच्छेद 1 से नहीं जोड़ सकते हैं ताकि हम इस अनुच्छेद को स्वीकार कर सकें?

***माननीय श्री के. सन्तानमः** यदि अनुच्छेद 1 में नाम बदला जायेगा तो समनुवर्त्ती परिवर्तन किये जा सकते हैं। इस समय इन संशोधनों को उपस्थित करने की आज्ञा न दी जाये और उन्हें अनुच्छेद 1 पर विचार करते समय उठाया जाये।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): माननीय सदस्य महोदय ने जो कुछ कहा उसका एक शब्द भी मैं नहीं सुन पाया।

***उपाध्यक्षः** श्री सन्तानम्, कृपया माइक पर आकर स्थिति का स्पष्टीकरण कर दीजिये। श्री कामत, कृपया अधीर न होइये।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, हम उन्हें सुनने के लिये अधीर हैं।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** जब हम नामों के सम्बन्ध में निर्णय करें, चाहे हम प्रस्तावना पर विचार करते समय अथवा अनुच्छेद 1 पर विचार करते समय ऐसा करें, तो सारे विधान में समनुवर्त्ती परिवर्तन किये जा सकते हैं। इसलिये मेरे विचार से इस प्रश्न को हर समय उठाने की आवश्यकता नहीं है। यदि आप इस अनुच्छेद को स्वीकार करना चाहें तो ये सब बातें इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में अप्रासंगिक समझी जानी चाहियें। अन्यथा प्रत्येक अनुच्छेद को इसलिये स्थगित करना होगा कि इन संशोधनों को स्थगित करना है क्योंकि बिना इन पर विचार किये हुए हम अनुच्छेद को स्वीकार नहीं कर सकते हैं। इसलिये मेरा यह सुझाव है कि इस प्रकार के सभी संशोधनों को किसी विशेष अनुच्छेद से सम्बन्धित न समझना चाहिये बल्कि सामान्यतः विधान से सम्बन्धित समझना चाहिये।

***उपाध्यक्षः** मेरे विचार से व्यावहारिक कारणों से हमें श्री सन्तानम् द्वारा प्रस्तावित कार्यप्रणाली को स्वीकार कर लेना चाहिये।

अब हम संशोधन संख्या 1035 को उठाते हैं। इसमें केवल इसका ही उल्लेख नहीं है कि भविष्य में हमारी मातृभूमि का क्या नाम होगा बल्कि इसका भी उल्लेख है कि प्रधान का वेतन क्या होगा। इसलिये इसे उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जाती।

***प्रोफेसर के.टी. शाहः** श्रीमान्, मैं यह उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 41 के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'41. The Chief Executive and Head of the State in the Union of India shall be called the President of India.'"

41. भारतीय संघ में मुख्य अधिशासक और राज्य का प्रमुख भारत का प्रधान कहा जायेगा।)"

मैं इसके विकल्प को नहीं पढ़ूंगा और अपने को केवल मुख्य प्रस्ताव तक ही सीमित रखूंगा।

प्रधान की उपाधि के सम्बन्ध में इस खण्ड को उसके वर्तमान रूप ही में रखने के बजाय मैं यह चाहता हूं कि प्रधान के पद तथा उसकी शक्ति का भी कुछ उल्लेख हो। भारत के प्रधान के पद और उपाधि का जिस प्रकार वर्तमान खण्ड में वर्णन किया गया है उससे अधिक स्पष्ट शब्दों में उनका उल्लेख होना चाहिये। इसीलिये मैंने 'मुख्य अधिशासक और राज्य का प्रमुख' शब्द रखे हैं।

मैं समझता हूं कि राज्य के प्रमुख के रूप में प्रधान के पद और स्थान के सम्बन्ध में कोई विवाद नहीं है। उसका स्थान शासन के प्रमुख से भिन्न है। मेरे विचार से शासन का प्रमुख प्रधान-मन्त्री अथवा प्रधान भी हो सकता है। चाहे जो भी हो, शासन के प्रमुख का स्थान भिन्न है। परन्तु उत्सवों पर अथवा ऐसे अवसरों पर जब रस्मों को पूरा करना होता है अथवा गम्भीरता का परिचय देना होता है, लोगों के एक ऐसे प्रतिनिधि की आवश्यकता होती है, जिसमे सारे राष्ट्र की और सारे राज्य की सर्वसत्ता सन्निहित हो। इसलिये मेरे विचार से अच्छा तो यह होगा कि मूल अनुच्छेद के स्थान पर मेरे संशोधन को प्रविष्ट किया जाये और भारत के प्रधान को मुख्य अधिशासक और राज्य का प्रमुख कहा जाये। मैं इसकी विस्तृत व्याख्या करके सभा का समय नष्ट नहीं करना चाहता, क्योंकि इस संशोधन में संक्षेप में जो कुछ कहा गया है उसी को मैं विस्तार से कहूंगा। इसलिये अधिक समय न लेकर मैं सभा से सिफारिश करता हूं कि यह संशोधन स्वीकार कर लिया जाये।

***उपाध्यक्षः** क्या आप दूसरा भाग नहीं उपस्थित कर रहे हैं?

***प्रोफेसर के.टी. शाहः** मैं दूसरा भाग उपस्थित नहीं कर रहा हूं।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 1037 को उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी गई है। इसका कारण सभा को विदित है। संशोधन संख्या 1038 को उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जाती है।

(संशोधन संख्या 1039 उपस्थित नहीं किया गया।)

[उपाध्यक्ष]

अब इस अनुच्छेद पर सामान्य विचार-विमर्श हो सकता है, यद्यपि मेरे विचार से इसकी आवश्यकता नहीं है।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, मैं इस सभा का बहुत समय नहीं लेना चाहता, परन्तु चूंकि पिछले एक सप्ताह या इससे अधिक समय से मैंने कुछ भी समय नहीं लिया है, इसलिये मेरे विचार से मुझे एक-आध मिनट दिया जा सकता है।

मैं केवल प्रोफेसर के.टी. शाह के संशोधन पर ज़ोर देना चाहता हूं जिसमें एक निर्देश सन्निहित है जो इस सभा के विचार-विमर्श को ध्यान में रखते हुये बहुत महत्त्वपूर्ण है। विधान में एक कमी रह गई है। मैं नहीं जानता कि इस अवसर पर यह विचार व्यक्त किया जाना चाहिये अथवा नहीं परन्तु उन्होंने ठीक ही कहा है कि हमें इसे परिभाषित कर देना चाहिये कि जहां तक सर्वसत्ता का सम्बन्ध है लोगों का प्रतिनिधि कौन समझा जायेगा। वे यह कहते हैं कि भारत में राज्य का प्रमुख लोगों की सर्वसत्ता का प्रतिनिधित्व करेगा। हमने अभी इस प्रश्न को हल नहीं किया है कि सर्वसत्ता कहां स्थित होगी। मैंने इस सम्बन्ध में एक संशोधन उपस्थित किया था और उस समय यह वचन दिया गया था कि प्रस्तावना पर विचार-विमर्श करते समय उसे उठाया जा सकता है। श्रीमान्, मैं उस अवसर की प्रतीक्षा कर रहा हूं। परन्तु मेरी यह धारणा है कि राज्य के प्रमुख को लोगों की सर्वसत्ता का प्रतिनिधित्व भी करना चाहिये। अन्यथा लोगों के लिये अभिव्यक्ति का कौन-सा साधन रह जायेगा? जनतंत्रात्मक देशों में किसी भी सरकार का यह दावा नहीं हो सकता कि वह सभी लोगों का पूर्ण प्रतिनिधित्व करती है। यहां की सरकार यद्यपि लोगों की आशाओं और आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करती है और वर्तमान शासनाधिकारी देश में सबसे अधिक लोकप्रिय हैं परन्तु यह नहीं कहा जा सकता है कि वे भारत के सभी लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं। वे सभी लोगों के प्रतिनिधि इसलिये नहीं हैं कि उनकी एक दल के प्रति निष्ठा है और उस दल के कार्यक्रम के आधार पर वे निर्वाचित हुये हैं। साधारणतया कोई भी सरकार देश के बहुसंख्यक दल का प्रतिनिधित्व करेगी। इसलिये कोई भी सरकार सभी लोगों की ओर से नहीं बोल सकती। कोई इकाई, कोई अधिकारी अथवा कोई व्यक्ति ऐसा होना चाहिये जिसमें सर्वसत्ता सन्निहित हो और जिसमें लोगों के

परमाधिकार समाविष्ट हों। इसलिये, श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि अच्छा तो यह होता कि हमने इसका उल्लेख किया होता कि प्रधान केवल राज्य का अधिशासी प्रमुख ही नहीं है बल्कि वह लोगों की सर्वसत्ता का भी प्रतीक है।

श्रीमान्, मैं लोगों और राज्य में विभेद करता हूं। राज्य हमेशा शासन करता है। जहां तक शासित और शासक का प्रश्न है, चाहे जनतंत्र हो अथवा अन्य कोई तंत्र, राज्य शासन करता है और लोग शासित होते हैं। इसलिये यह आवश्यक है कि जनतंत्रात्मक राज्य में अल्पसंख्यकों को अथवा विपक्षियों को अभिव्यक्ति का पूरा अवसर दिया जाये। क्योंकि विधान-मण्डल की किसी सभा में अथवा संसद् में यदि अल्पसंख्यक बोलते हैं तो वे केवल लोगों की ओर से बोलते हैं। यदि यह सभा विधान निर्मातृ-परिषद् के रूप में नहीं बल्कि विधान-सभा के रूप में समवेत् होती तो डॉ. अम्बेडकर और उनके सहकारी शासन का प्रतिनिधित्व करते। वे शासन की कठिनाइयों को जानते हैं परन्तु चाहे ये कठिनाइयों कैसी ही क्यों न हों, लोग यह चाहते हैं कि उनके विचार व्यक्त किये जायें। विपक्षी दल ही उनके विचारों को व्यक्त कर सकता है और उनकी मांगों को उपस्थित कर सकता है और इसलिये यह आवश्यक है कि बहुसंख्यकों के शासन में उसकी रक्षा की जाये।

***उपाध्यक्ष:** क्या आप कृपा करके बतायेंगे कि इससे प्रधान के प्रश्न का क्या सम्बन्ध है?

***श्री महावीर त्यागी:** मैं इस पर ज़ोर देना चाहता हूं कि विधान में यह अवश्य ही प्रावहित होना चाहिये कि लोगों की सर्वसत्ता सरकार से भिन्न किसी अन्य व्यक्ति में भी सन्निहित होनी चाहिये। मैं केवल यह तर्क उपस्थित करना चाहता हूं कि कोई भी सरकार, चाहे वह कितनी ही लोकप्रिय क्यों न हो, सर्वसत्ताधारी होने का दावा नहीं कर सकती है। अच्छा तो यह होता कि प्रधान लोगों की इच्छा का प्रतीक बनाया जाता ताकि वह सभी की भक्ति तथा आदर का पात्र होता। वह उस दशा में सरकार और लोगों के बीच मध्यस्थता कर सकता। उस दशा में वह न केवल अधिशासन का प्रमुख होता बल्कि लोगों की सर्वसत्ता का भी प्रतिनिधित्व करता और अल्पसंख्यक भी उसे अपना प्रतिनिधि तथा रक्षक समझते। सर्वसत्ता लोगों में सन्निहित तो है परन्तु उसकी अभिव्यक्ति किस प्रकार होगी? सरकार उसकी अभिव्यंजना नहीं कर सकती क्योंकि सरकार सभी लोगों का प्रतिनिधित्व नहीं करती है। कभी यह हो सकता है कि बहुसंख्यक दल केवल

[श्री महावीर त्यागी]

इक्यावन प्रतिशत लोगों का हो। उस दशा में उनचास प्रतिशत लोगों का प्रतिनिधित्व ही न होगा। यदि सभा इससे सहमत है कि परमाधिकार और सर्वसत्ता लोगों में सन्निहित है तो कोई ऐसा अभिकारी होना चाहिये जो सर्वसत्ता का स्रोत हो और जो उसकी अभिव्यंजना कर सके।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** श्रीमान्, मैं यह सूचित करना चाहता हूं कि इस विधान में लोगों की सर्वसत्ता का समावेश संसद् में है। जिन देशों में संसदात्मक अधिशासी-वर्ग है उनके विधानों में इसी प्रकार की व्यवस्था है।

***श्री महावीर त्यागी:** अपने मित्र की इस बात में मैं निस्तब्ध हो गया हूं। मैं तुरन्त ही उनके तर्क का उत्तर नहीं दे सकता हूं। परन्तु मेरी यह धारणा है कि संसद् में सर्वसत्ता सन्निहित नहीं होगी क्योंकि संसद् में राज-परिषद् भी होगी। मेरा यह निवेदन है कि राज-परिषद् लोगों का प्रतिनिधित्व नहीं करेगी क्योंकि यह प्रावहित किया गया है कि राज-परिषद् केवल प्रान्तों के बहुसंख्यक दलों का प्रतिनिधित्व करेगी। वह सभा एकक संक्राम्य मत द्वारा अनुपाती प्रतिनिधित्व से नहीं निर्मित होगी। वह राज्यों की सभा होगी और उसके सदस्य विभिन्न राज्यों का प्रतिनिधित्व करेंगे। परन्तु वे भी बहुसंख्यक दल के प्रतिनिधि होंगे। इस प्रकार उत्तर-सभा के सदस्य अपनी सरकारों के प्रतिनिधि होंगे और लोगों के प्रतिनिधि नहीं होंगे। यह कहा गया है कि राज-परिषद् में 250 सदस्य होंगे। उनके मस्तिष्क में सदा विभिन्न राज्यों की सरकारों की कठिनाइयां रहेंगी। वे यहां अपनी सरकारों की कठिनाइयां बताने तथा उनकी ओर से उनकी मांगों को उपस्थित करने आयेंगे। मेरा यह निवेदन है...

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): उन्हें भी बहुसंख्यक दल निर्वाचित करेगा।

***उपाध्यक्ष:** स्तब्ध होने के बजाय...

***श्री महावीर त्यागी:** मैं स्तब्ध नहीं हो सकता।

***उपाध्यक्ष:** स्तब्ध होने के बजाय...

***श्री महावीर त्यागी:** सभा मेरे अधिकार में है।

***उपाध्यक्ष:** स्तब्ध होने के बजाय क्या यह अच्छा न होगा कि इन बातों को आप उचित समय में कहें।

***श्री महावीर त्यागी:** मैं यह जानता हूं कि आपको वादानुवाद को शीघ्र समाप्त करने की चिन्ता है। श्रीमान्, मेरे मित्र श्री टी. टी. कृष्णमाचारी कहते हैं कि चूंकि राज-परिषद् के सदस्य लोगों के प्रतिनिधियों द्वारा चुने जायेंगे इसलिये वे भी लोगों का प्रतिनिधित्व करेंगे। मेरा यह दावा है कि वे उनका प्रतिनिधित्व नहीं करेंगे। उदाहरणार्थ मेरे प्रान्त के लोगों ने मुझे विधान-परिषद् का सदस्य चुना है परन्तु यदि मैं पब्लिक सर्विस कमीशन में काम करने के लिये भेजा जाता हूं तो मैं केवल कमीशन का सदस्य होऊंगा और लोगों के प्रतिनिधि के रूप में काम नहीं करूंगा। इसी प्रकार जब आप राज-परिषद् के लिये सदस्य चुनेंगे तो वे लोगों के प्रतिनिधि की हैसियत से काम नहीं कर सकते बल्कि वे केवल अपने-अपने राज्यों का प्रतिनिधित्व करेंगे। वे सरकारों का प्रतिनिधित्व करने के लिये भेजे जायेंगे। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि संसद् लोगों की सर्वसत्ता का उत्कृष्ट रूप से प्रतिनिधित्व नहीं करेगी क्योंकि उसका संचालन बहुसंख्यक दल द्वारा ही होगा। यदि जो लोग शासित हैं वे सीधे-सीधे अपनी भावनाओं को व्यक्त नहीं कर सकते हैं तो उनका वक्ता अर्थात् प्रधान उनकी ओर से बोलेगा और वह अल्पसंख्यकों के ही नहीं बल्कि सभी लोगों के हितों की रक्षा करेगा। श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि यह प्रश्न गम्भीर विचार के योग्य है। इसलिये मुझे आशा है कि यह सभा मेरे सुझाव पर यथोचित विचार करेगी।

***श्री एच.वी. कामत:** उपाध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 41 को अनुच्छेद 1 के समान विधान का सबसे छोटा अनुच्छेद होने का श्रेय प्राप्त है। यह केवल सात शब्दों का अनुच्छेद है। और इस छोटे से अनुच्छेद पर अधिक वादानुवाद की आवश्यकता नहीं है। इसलिये मेरे मित्र प्रोफेसर शाह ने सर्वसत्ता के जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है और जिसकी ओर मेरे मित्र श्री त्यागी ने भी संकेत किया है उसकी मैं विस्तृत व्याख्या नहीं करना चाहता। श्रीमान्, आपकी अनुमति से मैं सभा का ध्यान केवल इस ओर आकृष्ट करना चाहता हूं कि इस अनुच्छेद को सभा ने अगस्त सन् 1947 ई. में किस रूप में स्वीकार किया था और उसे विधान के मसौदे में किस प्रकार परिवर्तित कर दिया गया है। श्रीमान्, मुझे आशा है कि डॉ. अम्बेडकर इस ओर ध्यान दे रहे हैं। मैं उनका ध्यान इस ओर दिलाना चाहता हूं कि सभा में पिछले वर्ष स्वीकृत होने के उपरान्त इस अनुच्छेद में क्या परिवर्तन किया गया है। मैं नहीं जानता कि मसौदा-समिति के विद्वान लोगों ने किन कारणों से इस अनुच्छेद में इस प्रकार के परिवर्तन किये। मेरे पास समिति के प्रतिवेदन—पहली माला और दूसरी माला—हैं और दोनों में जहां मेरे पास अनुच्छेद की

[श्री एच.वी. कामत]

शब्दावली का सम्बन्ध है, कोई मतभेद प्रकट नहीं किया गया है। पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने जिस समिति की अध्यक्षता की थी और जिसके सदस्य मेरे विचार से डॉ. अम्बेडकर भी थे, अर्थात् संघीय विधान-समिति के प्रतिवेदन को पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने 4 जुलाई सन् 1947 ई. को उपस्थित किया था और इस सभा ने उस पर अगस्त सन् 1947 ई. में किसी समय विचार किया था और उसे अंशत: स्वीकार किया था। यदि इस सभा द्वारा स्वीकृत इस प्रतिवेदन की ओर डॉ. अम्बेडकर ध्यान दें तो वे देखेंगे कि अनुच्छेद 41 के अनुरूप उसमें जो अनुच्छेद हैं उसमें कहा गया है कि:

"संघ का प्रमुख प्रेसीडेण्ट (राष्ट्रपति) होगा।"

अब मसौदे में यह अनुच्छेद परिवर्तित रूप में इस प्रकार रखा गया है:

"भारत का एक प्रेसीडेण्ट होगा।"

पिछले वर्ष इस प्रतिवेदन को जिस समिति ने सभा में उपस्थित किया था उसमें न केवल डॉ. अम्बेडकर थे परन्तु मसौदा-समिति के कुछ बुद्धिमान सदस्य—नहीं अधिकांश बुद्धिमान सदस्य भी—थे। मेरे विचार से केवल श्री माधव राव और श्री खेतान संघीय विधान-समिति में नहीं थे। अन्य सभी सदस्य उस समिति में थे और सभा में विधान-समिति का जो प्रतिवेदन उपस्थित किया गया है उसमें मतभेद का कोई लेख सम्बद्ध नहीं है। मैं डॉ. अम्बेडकर से यह जानना चाहता हूं कि आज विधान के मसौदे में यह अनुच्छेद जिस रूप में है उसमें 'राष्ट्रपति' शब्द क्यों नहीं है? श्रीमान्, क्या इसका कारण यह है कि हाल ही से हमें कुछ भारतीय शब्दों से, अथवा हिन्दी शब्दों से घृणा होने लगी है और हम जहां तक हो सकता है उन्हें अंग्रेजी के विधान से निकालने का प्रयास करने लगे हैं? मेरे मस्तिष्क में "प्रदेश" शब्द नहीं है परन्तु हमने 'बेगार' और 'पंचायत' जैसे शब्दों को स्वीकार किया है। मैं कह नहीं सकता कि उन अंग्रेजों के अतिरिक्त जो भारत में नौकरी कर चुके हैं अन्य कितने अंग्रेज़ "बेगार" और "पंचायत" शब्दों को समझते हैं। इसलिये मैं जानना चाहता हूं कि डॉ. अम्बेडकर ने और मसौदा-समिति के बुद्धिमान लोगों ने इस सभा में जिस रूप में यह अनुच्छेद उपस्थित किया गया था उसमें से "राष्ट्रपति" शब्द को किस कारण निकाल दिया है? क्या इसका कारण यह है कि यह नाम अथवा उपाधि केवल कांग्रेस के प्रेसीडेण्ट के लिये सुरक्षित रखी जायेगी? जो कांग्रेस संगठन आज है और जो विधान के प्रयोग में आने के बाद भी रहेगा उसके प्रधान का नाम प्रेसीडेण्ट

प्रचलित हो गया है। यह तर्क उपस्थित किया जा सकता है कि राष्ट्रपति शब्द प्रचलित नहीं है और कई वर्षों से भारत में प्रचलित नहीं रहा है। मैं नहीं जानता कि पिछले पच्चीस वर्षों में डॉ. अम्बेडकर इस राष्ट्रपति शब्द से परिचित थे अथवा नहीं। परन्तु पिछली दो पीढ़ियों से राष्ट्रपति शब्द चलन में रहा है और कांग्रेस संगठन के प्रधान के लिये प्रयुक्त रहा है और उससे यह समझा जाता रहा है कि वह राष्ट्र का प्रधान है। अथवा क्या इसका कारण यह है कि जब मसौदा-समिति के बुद्धिमान लोग कुछ बन्धनों से मुक्त हो गये तो—क्योंकि जब वे विधान-समिति के सदस्य थे तो पण्डित नेहरू भी उसमें थे और वे राष्ट्रपति रहे थे—जब वे नेहरू प्रभृति अन्य सदस्यों के बन्धनों से मुक्त हो गये तो वे केवल मसौदा-समिति के सात सदस्यों के रूप में समवेत् हुये और उन्होंने यह सोचा कि यह राष्ट्रपति शब्द सुन्दर अथवा कर्णप्रिय नहीं है? अथवा क्या इसका कारण यह है कि वास्तव में उनके हृदय में भले ही उस व्यक्ति के लिये आदर हो जो पहले राष्ट्रपति था परन्तु इस शब्द के प्रति अधिक आदरभाव नहीं था?

उपाध्यक्ष: आपको यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि डॉ. अम्बेडकर ने यह क्यों किया।

***श्री एच.वी. कामत:** मैं केवल उन कारणों को बताना चाहता था जिनसे सम्भवत: प्रेरित होकर डॉ. अम्बेडकर ने ऐसा किया हो और इस सम्बन्ध में अपना मत प्रकट करना चाहता था। इसलिये मैं डॉ. अम्बेडकर से यह जानना चाहता हूं कि उस अनुच्छेद को ध्यान में रखते हुये जिसे इस सभा ने पिछले वर्ष एकमत से स्वीकार किया था उन्होंने तथा मसौदा-समिति के उनके सहकारियों ने इस "राष्ट्रपति" शब्द को इस अनुच्छेद से निकालने का क्यों प्रयास किया है और उसे उस रूप में क्यों रखा है, जैसा कि वह विधान के मसौदे में है?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** उपाध्यक्ष महोदय, अपने संशोधन को उपस्थित करते हुये प्रोफेसर शाह ने जिन प्रश्नों को उठाया है उनका उत्तर देने के पूर्व मैं श्री कामत द्वारा की हुई एक साधारण आलोचना का उत्तर देना चाहता हूं। श्री कामत ने मसौदा-समिति पर यह आरोप लगाया है कि उसने अनधिकृत रूप से संघीय विधान-समिति के प्रतिवेदन की भाषा बदल डाली है। यदि मैं उन्हें ठीक समझ पाया हूं तो उन्होंने मसौदा-समिति पर यह दोष लगाया है कि उसने उस समिति के प्रतिवेदन के पैरा 1 में 'प्रेसीडेण्ट' के बाद कोष्टक में दिये हुये 'राष्ट्रपति' शब्द को निकाल दिया है। श्रीमान्, मसौदा-समिति ने यह इसलिये नहीं किया कि उसे 'राष्ट्रपति' शब्द से द्वेष है अथवा वह विधान में हिन्दी शब्द रखने के विरुद्ध हैं। उसे निकालने का कारण यह है। हमें यह बताया गया था कि

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

मसौदा-समिति के साथ ही विधान-परिषद् के अध्यक्ष ने एक दूसरी समिति अथवा दो समितियां नियुक्त की हैं जो हिन्दी में और हिन्दुस्तानी में विधान का मसौदा तैयार करने वाली हैं। इसलिये हमने यह सोचा कि चूंकि विधान का मसौदा हिन्दी में और हिन्दुस्तानी में तैयार होने वाला है, इसलिये हमें इस 'राष्ट्रपति' शब्द को उन समितियों के सदस्यों के विचारार्थ छोड़ देना चाहिये क्योंकि 'राष्ट्रपति' शब्द अंग्रेज़ी का नहीं है और हम तो अंग्रेज़ी में मसौदा तैयार कर रहे थे। इसके अतिरिक्त मेरे मित्र ने मुझसे पूछा है कि क्या मैं इससे परिचित नहीं था कि यह शब्द कांग्रेस की शब्दावली में कई वर्षों से प्रयुक्त है। मैं जानता हूं कि यह सच है और मैंने भी उसे कई स्थानों में पढ़ा है। इस सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं है; परन्तु मैं यह निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि यह शब्द कानूनी शब्द हो गया है अथवा नहीं। इसलिये उत्तर देने के लिये उठने के पूर्व मैंने हिन्दी और हिन्दुस्तानी के विधान के मसौदों को देख लेना उचित समझा। मैं अपने मित्र श्री कामत का ध्यान इस ओर आकृष्ट करना चाहता हूं कि इन दो समितियों ने किस प्रकार की भाषा प्रयोग की है। मैं हिन्दुस्तानी के मसौदे में से पढ़ रहा हूं। उसमें कहा गया है कि:

"हिन्द का एक प्रेसीडेण्ट होगा..." उसमें 'राष्ट्रपति' शब्द प्रयुक्त नहीं है।

हिन्दी समिति ने जो मसौदा तैयार किया है उसके अनुच्छेद 41 में 'प्रधान' शब्द प्रयोग किया गया है। उसमें भी 'राष्ट्रपति' शब्द नहीं है।

***श्री एच.वी. कामत:** परन्तु, श्रीमान्, मैंने यह कहा था कि इस सभा ने इस अनुच्छेद को जिस रूप में स्वीकार किया था उसमें 'राष्ट्रपति' शब्द था। हिन्दी और हिन्दुस्तानी समितियों के प्रतिवेदन सभा के सम्मुख नहीं हैं। मैं केवल यह चाहता था कि इस समय जिस मसौदे पर विचार हो रहा है उसमें इस शब्द को स्थान दिया जाना चाहिये।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मुझे अभी सूचना मिली है कि उर्दू के मसौदे में "सदर" शब्द का प्रयोग किया गया है। (*हंसी*)

अब मैं श्रीमान्, उस प्रश्न पर आता हूं जो इस अनुच्छेद के सार के सम्बन्ध में है और जो प्रोफेसर के.टी. शाह के संशोधन से उठता है। यदि मैं ठीक समझ पाया हूं तो उनका संशोधन विधान के मसौदे की सारी योजना से ही भिन्न है। प्रोफेसर के.टी. शाह ने "मुख्य अधिशासक और राज्य का प्रमुख" शब्दों का प्रयोग किया है। मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी सन्देह नहीं है कि इन शब्दों को प्रविष्ट

करके वे अमेरिका के प्रधानमूलक अधिशासी-वर्ग की प्रणाली का न कि विधान के मसौदे की संसदात्मक अधिशासी-वर्ग की प्रणाली का सन्निवेश चाहते हैं। यदि मेरे मित्र प्रोफेसर शाह संघीय विधान-समिति के प्रतिवेदन को देखेंगे तो उन्हें पता लगेगा कि मसौदा-समिति ने उस समिति के प्रतिवेदन में दिये हुये प्रस्तावों का ही अनुसरण किया है। उस समिति के प्रतिवेदन में यह कहा गया है कि यद्यपि प्रधान अधिशासी-वर्ग का प्रमुख होगा किन्तु उसका पथ-प्रदर्शन एक मंत्रिपरिषद् करेगा और विधान के अनुसार उसे जो अधिकार दिया गया है उसके अधीन वह जो भी कार्य करे उनके सम्बन्ध में उसे उस परिषद् की सलाह माननी होगी। वह कोई ऐसा प्रमुख न होगा जो सर्वत्र स्वतंत्र हो और जिसे किसी की भी सलाह मान्य न होगी। यही संसदात्मक शासन-प्रणाली है। संयुक्त राज्य अमेरिका के शासन में विभिन्न विभागों के अध्यक्ष सेक्रेटरी ऑफ स्टेट होते हैं और वे शासन को चलाते हैं और मुझे इस सम्बन्ध में कुछ भी सन्देह नहीं है कि वे शासन-कार्य के सम्बन्ध में प्रेसीडेण्ट को भी परामर्श देते है। किन्तु सैद्धान्तिक दृष्टि से प्रेसीडेण्ट सेक्रेटरी ऑफ स्टेट के परामर्श को मानने के लिये बाध्य नहीं है। इसी कारण संयुक्त राज्य अमेरिका का प्रेसीडेण्ट अधिशासी-वर्ग का मुख्य प्रमुख कहा जाता है। हमने उस प्रणाली को स्वीकार नहीं किया है। हमने संसदात्मक प्रणाली को स्वीकार किया है और इसलिये इस अवसर पर मेरा यह निवेदन है कि हम प्रोफेसर के.टी. शाह के प्रश्न पर उस समय तक विचार नहीं कर सकते हैं जब तक हम विधान के मसौदे के अनुच्छेद 61 पर विचार न कर ले जिसमें यह कहा गया है कि प्रधान का यह कर्त्तव्य है कि वह मन्त्रिपरिषद् के परामर्श के अनुसार कार्य करे। क्या हम यह कहना चाहते हैं अथवा नहीं कि मन्त्रियों का परामर्श प्रधान को मान्य होगा? यही वास्तविक प्रश्न है। यदि हम यह निर्णय कर लें कि प्रधान को मंत्रिपरिषद् का परामर्श मान्य न होगा तो सभा प्रोफेसर के.टी. शाह के संशोधन को स्वीकार कर सकती है। परन्तु मेरा यह निवेदन है कि अभी इस प्रश्न पर विचार नहीं किया जा सकता है यदि हम अनुच्छेद 61 को निकाल देने का निश्चय करें तो हम ऐसे समनुवर्त्ती परिवर्तन कर सकते हैं कि प्रोफेसर शाह के सुझाव का भी समावेश हो जायेगा। परन्तु मैं निश्चित रूप से कह सकता हूं कि अभी इस पर विचार करने का समय नहीं आया है। इसलिये इस पर विचार नहीं किया जाना चाहिये।

उपाध्यक्षः अब मैं संशोधन संख्या 1036 पर, जो प्रोफेसर के.टी. शाह के नाम से है, मत लूंगा। प्रस्ताव यह है किः

[उपाध्यक्ष]

"अनुच्छेद 41 के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'41. The Chief Executive and Head of the State in the Union of India shall be called the President of India.' "

(41. भारतीय संघ में मुख्य अधिशासक और राज्य का प्रमुख भारत का प्रधान कहा जायेगा।)"

प्रस्ताव गिर गया।

***उपाध्यक्ष:** अब अनुच्छेद पर मत लिया जायेगा। प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 41 विधान का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 41 विधान का अंग हो गया।

अनुच्छेद 42

***उपाध्यक्ष:** सभा के सम्मुख यह प्रस्ताव है कि:

"अनुच्छेद 42 विधान का अंग बना लिया जाये।"

***श्री एच.वी. कामत:** मुझे यह व्यवस्था-सम्बन्धी आपत्ति करनी है कि अनुच्छेद 42 यथास्थापन नहीं रखा गया है। क्रम यह होना चाहिये था कि 'प्रधान के निर्वाचन' सम्बन्धी अनुच्छेदों को पहले आना चाहिये था और प्रधान की शक्ति-सम्बन्धी अनुच्छेद को बाद को आना चाहिये था। मैं यह संघ-विधान-समिति के उस प्रतिवेदन के आधार पर कह रहा हूं जिसे सभा ने पिछले वर्ष स्वीकार किया था। इसलिये मेरा यह मत है कि अनुच्छेद 42 पर अनुच्छेद 43 के बाद विचार होना चाहिये।

***उपाध्यक्ष:** यह प्रश्न उस समय उठाया जा सकता है जब हम विधान का तीसरा पाठ करें।

***श्री एच. वी. कामत:** परन्तु मसौदा-समिति को इसे लिख लेना चाहिये।

***उपाध्यक्ष:** मैं यह देख रहा हूं कि डॉ. अम्बेडकर की पेंसिल तेजी से चल रही है।

अब संशोधनों के सम्बन्ध में संशोधन संख्या 1043 और 1049 को उपस्थित करने की आज्ञा नहीं दी जाती क्योंकि ये शाब्दिक हैं। संशोधन संख्या 1040, जो प्रोफेसर के.टी. शाह के नाम से है।

***प्रोफेसर के.टी. शाहः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 42 के खण्ड (1) के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'(1) The sovereign executive power and authority of the Union shall be vested in the President, and shall be exercised by him in accordance with the Constitution and in accordance with the laws made thereunder and in force for the time being.' "

[(1) संघ की सार्वभौम अधिशासी शक्ति तथा प्राधिकार प्रधान में सन्निहित होंगे और वह उन्हें विधान के अनुसार और उसके अधीन बनाये हुये तथा उस समय प्रयुक्त कानूनों के अनुसार प्रयोग में लायेगा। अथवा विकल्प से,]

"(2) The executive authority, power and functions of Government shall be vested in the President and shall be exercised by him in accordance with the Constitution and the law with the advice and help of such ministers, officers or servants of the State as may be deemed necessary by him."

[(2) सरकार का अधिशासी, प्राधिकार, शक्ति और प्रकार्य प्रधान में सन्निहित होंगे और वह उन्हें विधान तथा कानून के अनुसार ऐसे मन्त्रियों, राज्य के अधिकारियों अथवा कर्मचारियों के परामर्श से प्रयोग में लायेगा जिन्हें वह आवश्यक समझे।]

इसकी व्याख्या करने के पूर्व कि एक ही विचार के दो विकल्पों में क्या अन्तर है मैं, आपकी अनुमति से, यह बताना चाहता हूं कि मसौदा-समिति के सभापति ने किसी संशोधन के यथास्थान न होने अथवा उसे परिवर्तित करने के सम्बन्ध में इस सभा में जो तर्क उपस्थित किया है वह स्वयं यथास्थान नहीं है। यह इसलिये कि आखिर मसौदा-समिति ने यह क्रम निश्चित किया है और हम तो केवल इसी क्रम के अनुसार संशोधन उपस्थित कर सकते है।

एक तर्क, जिससे मैं सहमत हूं यह भी उपस्थित किया गया था कि यदि हम संशोधनों और अनुच्छेदों को स्थगित करते जायेंगे तो उनके पारस्परिक सम्बन्ध को भूला जा सकता है अथवा उसकी उपेक्षा की जा सकती है और इसलिये पूर्ण

[प्रो. के.टी. शाह]

विचार-विमर्श के हित में तो यह है कि कोई निश्चित क्रम रखा जाये। हमें इस विचार-विमर्श के आरम्भ होते समय एक अनुच्छेद के सम्बन्ध में आपके इस सुझाव से हर्ष हुआ कि उल्लिखित संशोधनों पर उल्लिखित क्रम से विचार होगा।

यह बहुत ही तर्कपूर्ण और उचित बात है। परन्तु जब कोई संशोधन अथवा अनुच्छेद सभा के सम्मुख रखा जाता है तो सदस्यों को यह कहकर चकित कर दिया जाता है कि वह यथास्थान अथवा यथासमय उपस्थित नहीं किया गया है। मेरे विचार से यह अनुचित है। जिन लोगों पर मसौदा बनाने का दायित्व है उन्हें इसका निश्चय कर लेना चाहिये कि वे किस क्रम से विधान के अध्यायों को उठायेंगे। यह हमारी समझ में आ सकता है और हम अपना सहयोग प्रदान कर सकते हैं। मैं नम्रतापूर्वक यह निवेदन करना चाहता हूं कि एक अनुच्छेद के बीच ही में दूसरे अनुच्छेद को उठा लेने से अथवा एक धारा के बीच में दूसरी धारा को उठाने से उन लोगों को साथ चलने में तथा तर्क उपस्थित करने में कुछ कठिनाई का अनुभव होता है जिनके नाम से कई संशोधन हैं। प्रत्येक व्यक्ति कुछ विशेष अनुच्छेदों के लिये तैयार हो के आता है परन्तु एकाएक यह कह दिया जाता है कि उन पर विचार नहीं होगा अथवा वे यथास्थान नहीं हैं, इत्यादि। कितना ही किसी को अपना तर्क स्मरण क्यों न हो परन्तु जब उसे एकाएक यह निश्चय करना होता है कि उसे अपना प्रस्ताव उपस्थित करना चाहिये अथवा नहीं तो वह भ्रम में पड़ जाता है।

इसके अतिरिक्त इस तर्क अथवा सुझाव को उपथित करने से कि कोई संशोधन यथास्थान नहीं है और उसे किसी अन्य अनुच्छेद के बाद उठाया जाये, सदस्य कुछ कठिनाई में पड़ सकते हैं क्योंकि इससे मुख्य प्रश्न पर पहले से ही निर्णय हो सकता है। यदि आप इसे स्थगित कर दें और बाद के अनुच्छेद को उठायें तो...

***उपाध्यक्षः** प्रोफेसर शाह, क्या आप संशोधन उपस्थित नहीं कर रहे है?

***प्रोफेसर के.टी. शाहः** मैं अपनी कठिनाई बता रहा हूं क्योंकि इसके सम्बन्ध में भी यह कहा जा सकता है कि यह यथास्थान नहीं है। इसी कारण मैं इस सम्बन्ध में बोल रहा हूं। मैं यह नहीं कहता कि यह तर्क गलत हैं किन्तु मैं केवल यह कहना चाहता हूं कि इससे हमें अपने संशोधनों को उस क्रम से भी उपस्थित करने में कठिनाई होती है जो निर्धारित किया जाता है अथवा पुस्तक में छपा रहता है।

इस सम्बन्ध में इतना कहने के पश्चात् मैं स्पष्ट शब्दों में यह कहना चाहता हूं कि मेरे सभी संशोधन एक ही श्रेणी के हैं और वे विधान-सम्बन्धी तथा शक्ति तथा अर्थ-विभाजन सम्बन्धी एक सिद्धान्त से समुद्र समुद्भूत होते हैं जिसे भले ही स्वीकार न किया जाये परन्तु वह एक सुसम्भाव्य, सुपरिचित कार्यप्रणाली तो है ही।

इसी कारण मैंने यह संशोधन उपस्थित किया है। मुझे आशा है कि उसके गुण-दोषों के आधार पर ही उसकी परीक्षा की जायेगी और केवल इस दृष्टि से उस पर विचार न किया जायेगा कि वह यथास्थान नहीं है और इसलिये उस पर विचार नहीं किया जा सकता है। मेरा यह निवेदन है कि यदि आधारभूत सिद्धान्त उस सिद्धान्त से भिन्न भी है जो मेरे विचार से सभा को स्वीकार्य होना चाहिये था तो भी यह विषय, अर्थात् प्रधान की शक्तियों और स्थान के विषय पर आधारभूत सिद्धान्त से पृथक् विचार किया जा सकता है और यदि इसे स्वीकार कर लिया गया तो इसे विधान की उस योजना में भी प्रविष्ट किया जा सकता है जिसे आप स्वीकार कर चुके हैं।

इसलिये मेरा सुझाव यह है कि प्रधान की शक्तियां तथा उसके प्रकार्य वही होने चाहियें जो सर्वसत्ताधारी लोग राज्य के मुख्य अधिशासक द्वारा प्रयोग में लाते। मेरे विचार से जितने समय के लिये वे पदारूढ़ रहें उस समय तक वे मुख्य अधिशासक रहेंगे जैसे कि इंग्लैण्ड में सम्राट् मुख्य अधिशासक है, यद्यपि ब्रिटेन के विधान में शक्तियों का उतना पृथक्करण नहीं है जितना कि अमेरिका के विधान में।

इसलिये मैं पहली बात यह कहना चाहता हूं कि मेरे संशोधन को इस तर्क से खण्डित नहीं किया जा सकता है कि उसका इस विधान के आधारभूत सिद्धान्त अथवा प्रधान-मूलक शासन-प्रणाली के सिद्धान्त से नहीं बल्कि संसदात्मक शासन-प्रणाली के सिद्धान्त से सामंजस्य नहीं है और इसलिये इस पर विचार-विमर्श करने की आवश्यकता नहीं है। मेरा यह निवेदन है कि जो विचारधारा आपने अपनाई है उसके अनुसार भी इस संशोधन को मेरी ही शब्दावली में विधान में प्रविष्ट किया जा सकता है, यद्यपि मैं इसे स्वीकार करता हूं कि इसे उपस्थित करते समय मेरी विचारधारा कुछ भिन्न थी।

श्रीमान्, मैं यह चाहता हूं कि प्रधान की शक्तियों की स्पष्ट शब्दों में परिभाषा की जाये और वे विधान के अनुसार ही प्रयोग में आयें। मेरे विचार से इस सम्बन्ध में कोई मतभेद नहीं है। कोई भी यह नहीं कहेगा कि प्रधान विधान से परे है।

[प्रो. के.टी. शाह]

प्रधान का सृजन विधान द्वारा ही हुआ है और उसे विधान के अनुसार ही कार्य करना चाहिये। इसलिये मुख्य खण्ड 2 में जिन बातों पर ज़ोर दिया गया है उनकी अधिक व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है।

दूसरी बात यह है कि उसे अपनी शक्तियों का प्रयोग विधान के अधीन बनाये हुये कानूनों के अनुसार ही करना चाहिये। आपने विभिन्न अनुच्छेदों द्वारा संसद् को कानून बनाने का अधिकार दिया है। यदि विधान के अधीन कोई ऐसे कानून बनाये जायें जो सरकार के विभिन्न अंगों की शक्तियों को प्रदान करें अथवा उनका स्पष्टीकरण करें अथवा उन्हें विस्तृत बनायें तो यह सुझाव करना उचित ही होगा कि उन्हें विधान के अधीन बनाये हुये कानूनों के अनुरूप ही होना चाहिये।

अन्त में मंत्रियों, अधिकारियों और संघ के कर्मचारियों के परामर्श का विषय आता है। मेरे विचार में प्रधान को जो स्थान दिया गया है उसको दृष्टि में रखते हुये इसे भी अवश्य प्रविष्ट करना चाहिये। एक अन्य संशोधन में मैंने इस विषय को अधिक विस्तारपूर्वक रखा है। जब वह उठाया जायेगा तो मैं उस सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करूंगा।

जहां तक इस संशोधन का सम्बन्ध है, चूंकि मैं यह चाहता हूं कि मेरा संशोधन केवल इस कारण अस्वीकार न कर दिया जाये कि वह इस विधान के मसौदे को बनाने में जिस आधारभूत सिद्धान्त का अनुसरण किया गया है उससे असंगत है। मैंने मन्त्रिमण्डल के उत्तरदायित्व के सिद्धान्त का राज्य के प्रमुख और मुख्य अधिशासक के रूप में प्रधान के पद से सामंजस्य करने का प्रयास किया है। मैं एक बार फिर इंग्लैण्ड के सम्राट् का उदाहरण दूंगा जिसे मन्त्रियों के परामर्श से कार्य करना होता है। कम से कम वैधानिक व्यवस्था तो यही है। प्रत्येक अधिनियम इस प्रकार आरम्भ होता है : "यह अधिनियम राजाधिराज श्रीमान्, सम्राट् द्वारा धार्मिक तथा ऐहिक लार्डों तथा साधारणजनों के परामर्श से बनाया जाता है।" किसी भी विषय के सम्बन्ध में कोई भी कार्य तत्सम्बन्धी मंत्री के परामर्श से सम्राट् का किया हुआ कार्य होता है। यदि मन्त्रियों के परामर्श और मन्त्रियों के उत्तरदायित्व का सिद्धान्त स्वीकार न किया जाये तो इस कथन का कि "सम्राट् कोई गलत काम नहीं कर सकता" कोई महत्त्व ही नहीं रह जाता। इसलिये मैंने इस संशोधन में इसका उल्लेख किया है कि प्रधान को विधान के अनुसार तथा उसके अधीन बनाये हुये कानूनों के अनुसार तथा अपने मन्त्रियों के परामर्श के अनुसार कार्य करना चाहिये।

मैंने इसकी भी आवश्यकता समझी है कि विधान में "राज्य के अधिकारी और कर्मचारी' शब्दों को भी स्पष्ट रूप से प्रविष्ट किया जाये। प्रधान को केवल जो कुछ मन्त्री कहें उसी को सुनने का अधिकार न होना चाहिये। किन्तु उसे किसी अन्य विशेषज्ञ अथवा भारत के राज्य के अधिकारी अथवा कर्मचारी से भी परामर्श लेने का अधिकार होना चाहिये। इसके पहले जो सरकार थी वह इस प्रथा का अनुसरण करती थी कि किसी भी सरकारी विभाग का सचिव अपने मन्त्री के साथ अथवा स्वतंत्र रूप से भी शासन के प्रमुख के पास जा सकता था। यद्यपि मैं इस पर ज़ोर नहीं देता कि इसी सिद्धान्त का फिर अनुसरण किया जाये और सचिवों को यह अधिकार हो कि वे शासन के प्रमुख को अपना स्वतंत्र परामर्श अथवा अपने मन्त्री से विरुद्ध परामर्श दें, किन्तु मेरा यह विश्वास है कि यदि प्रधान को यह अधिकार हो कि उसे अपने मन्त्रियों की तुलना में अपनी स्थिति के सम्बन्ध में कोई कानून सम्बन्धी सन्देह होने पर महाप्राभिकर्त्ता और महाधिवक्ता जैसे किसी विशेषज्ञ अधिकारी को परामर्श के लिये बुला सके तो इससे वैधानिक तंत्र के प्रयोग में आने में कोई कठिनाई न होगी।

मेरा यह निवेदन है कि राज्य के प्रमुख और सर्वोच्च उत्तरदायी व्यक्ति होने के नाते उसे यह जानने का अधिकार होना चाहिये कि सम्बन्धित विभाग के विशेषज्ञ का क्या परामर्श है। संसदात्मक प्रणाली के अधीन उसे खण्डन का अधिकार न होगा और उसे अपने मन्त्री के परामर्श को अस्वीकार करने का कोई अधिकार न होगा। अन्त में मन्त्री का ही परामर्श माना जायेगा। परन्तु वह तभी माना जायेगा जब मेरे विचारानुसार प्रधान उस विषय के सम्बन्ध में कुछ ऐसी बातों की ओर ध्यान आकर्षित कर चुकेगा जिनकी कि मन्त्री ने उपेक्षा की हो।

एक महान् विधानवेत्ता ने इंग्लैण्ड के विधान का विश्लेषण करते हुये एक शताब्दी पूर्व यह कहा था कि ब्रिटेन के स्थायी अधिशासक, सम्राट् का कर्त्तव्य यह है कि वह चेतावनी दे, परामर्श दे और अन्त में आत्मसमर्पण कर दे। मेरी विचार-धारा के अनुसार, जिसका मैं यहां प्रतिपादन कर रहा हूं, प्रधान को अपनी व्यक्तिगत धारणा से नहीं परन्तु पहले से प्राप्त किये हुये विशेषज्ञों के परामर्श के अनुसार उसके सम्मुख उपस्थित किये हुये किसी विषय पर प्रकाश डालने का अधिकार होगा और तब वह सम्बन्धित मन्त्री अथवा उसके सारे विभाग से यह कह सकेगा कि अमुक-अमुक उचित दृष्टिकोण है। यदि शासनारूढ़ दल उसे उचित न समझे तो वह उसे अस्वीकार कर सकता है क्योंकि अन्ततोगत्वा उत्तरदायित्व तो उसी का होगा। किन्तु विधान में यह प्रावहित होना चाहिये कि प्रधान को सम्राट् के कर्मचारियों से परामर्श लेने का अधिकार होना चाहिये।

[प्रो. के.टी. शाह]

मैं यह सुझाव उपस्थित नहीं कर रहा हूं कि उसे देश के बाहर से इस प्रकार का परामर्श प्राप्त करने की स्वतंत्रता होनी चाहिये। मैं यह सुझाव नहीं रख रहा हूं कि उसे परामर्श लेने के लिये विदेशी विशेषज्ञों को आमन्त्रित करना चाहिये। पहले तो उसे अपने मन्त्रियों से ही परामर्श लेने का अधिकार होना चाहिये और फिर राज्य के अधिकारियों और कर्मचारियों से भी परामर्श लेने का अधिकार होना चाहिये। मेरे विचार से यदि आप इस विधान को मन्त्रियों के उत्तरदायित्व के सिद्धान्त पर भी आधृत समझें तो फिर भी यह व्यवस्था उससे असंगत नहीं है और इसलिये सर्वथा स्वीकार्य है। इसलिये मैं इस सभा से सिफारिश करता हूं कि यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाये।

(संशोधन संख्या 1041 उपस्थित नहीं किया गया।)

*__श्री मोहम्मद ताहिर__ (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 42 के खण्ड (1) में 'and may' (हिन्दी में 'और वह') शब्दों के बाद 'on behalf of the people of India' (भारत के लोगों की ओर से) शब्द रखे जायें।"

श्रीमान्, यदि मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया गया तो अनुच्छेद इस प्रकार हो जायेगा:

"The Executive power of the Union shall be vested in the President and may on behalf of the people of India be exercised by him in accordance with the Constitution and the law."

(संघ की अधिशासी शक्ति प्रधान में निहित होगी और वह भारत के लोगों की ओर से इसका प्रयोग विधान तथा कानून के अनुसार कर सकेगा।)

अनुच्छेद 41 से, जिसे हमने अभी स्वीकार किया है, हम यह समझते हैं कि प्रधान राज्य का प्रमुख होगा। श्रीमान्, कानून की दृष्टि से कोई व्यक्ति अपनी शक्ति को दो प्रकार से प्रयोग कर सकता है : अपनी ओर से अथवा किसी अन्य व्यक्ति की ओर से। इसलिये हमने यह देखना है कि प्रधान इन शक्तियों को कैसे प्रयोग करेगा। क्या वह अपनी ओर से प्रयोग करेगा अथवा किसी अन्य व्यक्ति की ओर से? इस सम्बन्ध में मैं सभा का ध्यान भारत शासन अधिनियम,

सन् 1935 ई., के पृष्ठ 3 की ओर आकृष्ट करता हूं जिसमें हम देखते हैं कि गवर्नर-जनरल भारत के सम्राट् की ओर से अधिशासी शक्ति का प्रयोग करता था। परन्तु अब इस देश का स्वामित्व भारत के लोगों को और केवल उन्हीं को प्रदान किया गया है। इसलिये यह आवश्यक है कि इस देश में जिस किसी शक्ति का प्रयोग किया जाये वह भारत के लोगों की ओर से ही किया जाये।

इस सम्बन्ध में मैं इस विधान के अनुच्छेद 49 की ओर भी संकेत करता हूं जिसमें प्रधान के लिये शपथ निर्धारित की गई है और उसमें यह कहा गया है कि:

"मैं, अमुक, गम्भीरतापूर्वक निश्चयोक्ति करता हूं कि मैं सच्चे हृदय से भारत के प्रधान-पद का निष्पादन करूंगा तथा अपनी उत्कृष्टतम योग्यता से विधान और कानून का रक्षण, परिरक्षण और प्रतिरक्षण करूंगा और मैं अपने को भारत की जनता की सेवा और कल्याण में तन-मन से लगाऊंगा।"

श्रीमान्, यदि मेरे संशोधन को स्वीकार न किया गया तो इस शपथ के साथ अनुच्छेद 42 (1) को पढ़ने से यह अर्थ निकलेगा कि प्रधान का व्यक्तित्व भारत के लोगों से ऊंचा होगा, परन्तु यह अर्थ कदापि नहीं है। मेरा यह निवेदन है कि चूंकि भारत के लोग ही देश के स्वामी हैं इसलिये प्रधान को अपनी सभी शक्तियों को केवल भारत के लोगों की ओर से, न अन्य किसी की ओर से प्रयोग करना चाहिये। इस कारण मुझे आशा है कि यह सभा मेरे संशोधन को स्वीकार करेगी।

(संशोधन संख्या 1044 उपस्थित नहीं किया गया।)

प्रोफेसर के.टी. शाह: उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 42 के खण्ड (2) के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'(2) Without prejudice to the generality of the foregoing provision and in accordance with this Constitution and the laws made thereunder for the time being in force, the President shall—

(a) convene or dissolve the Legislature of the Union, and place before it any proposal for legislation or for sums of money needed for the good government and efficient administration of the

[प्रो. के.टी. शाह]

country, or for its defence, or to provide for any sudden calamity in any part of the Union or any other emergency;

(b) have the power to assent to the laws duly passed by the Union Legislature;

(c) conduct and supervise any Referendum that may be decided upon to make to the Sovereign People in accordance with this Constitution;

(d) have the power to declare war, and make peace;

(e) be the supreme commander of all the armed forces of the Union;

(f) appoint all other executive and judicial officers, including the ministers, representatives of the Union in foreign countries as ambassadors, ministers, consuls, trade commissioners and the like; as well as the commanding officers in the armed forces of the Union;

(g) do all acts, exercise all powers and discharge all authority necessary or incidental to the power and authority vested in him by and under this Constitution;

(h) have power to refuse assent to any legislative proposal passed by both Houses of Parliament; or to recommend to Parliament that any legislative proposal passed by Parliament be reconsidered for reasons stated by the President, provided that any legislative proposal duly passed by Parliament, if refused assent by the President only once; and that the same proposal if passed in an identical form by Parliament in the next following sessions of that body, shall be deemed to have been duly passed

and become an Act of the Legislature, notwithstanding that the President has refused or continues to refuse to assent thereto;

(i) in every case in which the President refuses to assent to any legislative proposal duly passed by Parliament, the President shall record his reasons for refusing to assent and shall forward the reasons thus recorded to Parliament;

(j) in any case where the President, having duly submitted to Parliament, or to the People's House thereof, a legislative proposal he deems necessary for the safety of the State, its integrity or defence or to safeguard the nation's interests in a national emergeny, finds that Parliament is unwilling to consider or pass that proposal, may refer such a proposal to the people of the country; and if the proposal is approved, on such reference, by a majority of not less than two-thirds of the citizens voting, it shall forthwith become a law of the land. If on such reference the proposal is not approved by the requisite majority, it shall be deemed to have been negatived, and shall be treated as void and have no effect.' "

[(2) पूर्वगामी प्रावधान की व्यापकता पर बिना विपरीत प्रभाव डाले हुये और इस विधान और उसके अधीन बनाये हुये तथा इस समय प्रयुक्त कानूनों के अनुसार प्रधान को–

(क) संघ के विधान-मण्डल को आरम्भ करने अथवा समाप्त करने और उसके सम्मुख कानून बनाने के लिये अथवा देश के सुशासन तथा सुयोग्य प्रशासन के लिये आवश्यक धन-राशि के लिये अथवा देश की रक्षा के लिये अथवा संघ के किसी भाग में आकस्मिक विपत्ति के पड़ने पर प्रबन्ध के लिये अथवा किसी अन्य सद्यस्कृत्यस्थिति के लिये कोई भी प्रस्ताव रखने का अधिकार होगा;

(ख) संघीय विधान-मण्डल द्वारा यथाविधि पारित कानूनों के लिये अपनी स्वीकृति प्रदान करने की शक्ति होगी;

[प्रो. के.टी. शाह]

(ग) यदि इस विधान के अनुसार सर्वसत्ताधारी लोगों का मत लेने का निश्चय किया गया तो उसका संचालन तथा निरीक्षण करने का अधिकार होगा;

(घ) युद्ध अथवा शान्ति घोषित करने का अधिकार होगा;

(ङ) संघ की सभी सशस्त्र सेनाओं का सर्वोच्च सेनानायक होने का अधिकार होगा;

(च) अन्य सभी अधिशासी अधिकारियों और न्यायाधिकारियों को, जिनमें मन्त्री और विदेशों में संघ के प्रतिनिधि, जैसे अम्बेसेडर, मिनिस्टर, कांसल, व्यापारिक कमिश्नर आदि भी सम्मिलित हैं, तथा संघ की सशस्त्र सेना के सेनानायकों को नियुक्त करने का भी अधिकार होगा;

(छ) इस विधान द्वारा तथा इसके अधीन उसमें निहित शक्ति और प्राधिकार के अनुरूप तथा आनुषंगिक सभी शक्तियों और प्राधिकार को प्रयोग करने और सभी कार्य करने का अधिकार होगा;

(ज) संसद् की दोनों सभाओं द्वारा पारित किसी कानूनी प्रस्ताव को अस्वीकार करने की शक्ति होगी अथवा संसद् से यह सिफारिश करने की शक्ति होगी कि इसके पार किये हुये किसी कानूनी प्रस्ताव पर प्रधान के बताये हुये कारणों से पुनर्विचार किया जाये परन्तु संसद् द्वारा यथाविधि पार किये हुये किसी कानूनी प्रस्ताव को यदि प्रधान अस्वीकार करे तो केवल एक बार करेगा और यदि अगले अधिवेशन में संसद् उसी प्रस्ताव को उसी रूप में पार कर दे तो वह यथाविधि पार किया हुआ समझा जायेगा और विधान-मण्डल का अधिनियम हो जायेगा चाहे प्रधान उसे अपनी स्वीकृति देने से इन्कार क्यों न कर दें;

(झ) संसद् द्वारा यथाविधि पारित वैधानिक प्रस्थापना को यदि प्रधान स्वीकृति प्रदान करने के लिये सहमत न हो तो प्रधान उसके कारणों का उल्लेख करेगा और इस प्रकार उल्लिखित कारणों को संसद् के पास भेजेगा;

(ञ) यदि प्रधान संसद् के सम्मुख अथवा उसकी लोक सभा के सम्मुख कोई ऐसी वैधानिक प्रस्थापना यथानियम रखे जो वह देश के क्षेम, सुव्यवस्था अथवा रक्षा के हित में अथवा किसी राष्ट्रव्यापी सद्यस्कृत्यस्थिति के उपस्थित होने पर राष्ट्र के हितों के रक्षार्थ आवश्यक समझे और यह देखे कि संसद् उस प्रस्ताव को पार करने अथवा उस पर विचार करने के लिये सहमत नहीं है तो वह उस प्रस्थापना को देश के लोगों के सम्मुख रख सकता है और यदि ऐसा करने पर वह प्रस्थापना मत देने वाले कम से कम दो-तिहाई नागरिकों के बहुमत से स्वीकार कर ली जाये तो वह तत्काल ही देश का कानून हो जायेगा। किन्तु इस प्रकार लोगों के सम्मुख रखने पर यदि वह प्रस्थापना निश्चित बहुमत से स्वीकार न हुई तो यह समझा जायेगा कि वह अस्वीकार हो गयी है और यह भी समझा जायेगा कि उसका शून्यन हो गया है और उसका कोई प्रभाव न होगा।]

श्रीमान्, मैं यह स्वीकार करता हूं कि यह लम्बा संशोधन है। इसका उद्देश्य यह है कि प्रधान के अधिकारों को स्पष्ट और निश्चित कर दिया जाये।

मैंने जिन शक्तियों का प्रस्ताव किया है उनमें सन्निहित नये विचारों की चर्चा करने के पूर्व क्या मैं इस विषय की ओर संकेत कर सकता हूं, क्योंकि मुझे आशा है कि सम्भवत: मसौदाकार इससे सहमत हों, कि अनुच्छेद के प्रथम खण्ड में यह कहा गया है कि संघ की अधिशासी शक्ति प्रधान में निहित होगी और वह इसका 'प्रयोग' विधान तथा कानून के अनुसार कर सकेगा? मेरा पेशा वकालत का नहीं है और इसलिये मैं यह नहीं समझ पाया हूं कि इस प्रसंग में 'सकेगा' शब्द का क्या अर्थ है। परन्तु एक साधारण मनुष्य के नाते मेरी यह धारणा है कि इस शब्द से बहुत दुष्टता हो सकती है। यदि 'सकेगा' शब्द से प्रधान की स्वेच्छा का बोध होता है और वैधानिक कानून द्वारा उस पर विधान के अनुसार अथवा उसके अधीन बनाये हुये कानून के अनुसार अथवा अपने मन्त्रियों के परामर्श के अनुसार शक्तियों को प्रयोग करने का कोई दायित्व नहीं है तो मुझे भय है कि वह कई ऐसी शक्तियों को प्रयोग कर सकेगा जो विधान की शब्दावली के विरोध में न हों और उसके मतानुसार आवश्यक हों। इसलिये इस 'सकेगा' शब्द की शरण लेकर वह यह सब कुछ कर सकेगा। इसी दोष को दूर करने के लिये मैंने यह संशोधन उपस्थित किया है।

[प्रो. के.टी. शाह]

जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मैं किसी प्रकार के सन्देह को स्थान नहीं देना चाहता और इसलिये पहले संशोधन में मैंने 'सकेगा' शब्द के स्थान में 'करेगा' शब्द रखा है। अब संदेह के लिये कोई भी स्थान न रहने देने के लिये और कोई भी ऐसी स्थिति उत्पन्न न होने देने के लिये जो संदेहात्मक हो और जिसमें दोनों ओर से समान अधिकार का दावा किया जा सके मैंने अनुच्छेद 42(1) की साधारण शब्दावली के स्थान में सभी आठ अथवा दस विषयों की व्याख्या करने तथा उन्हें स्पष्ट करने का प्रयास किया है। मैंने उनकी स्पष्ट रूप से गणना कर दी है।

उनमें से अधिकांश के सम्बन्ध में तो जैसे संसद् को आरम्भ करने और समाप्त करने के सम्बन्ध में कोई आपत्ति नहीं की जा सकती है। निस्संदेह, यह सब कुछ मन्त्रियों के परामर्श से किया जायेगा। यही युद्ध अथवा शान्ति घोषित करने के अधिकार के सम्बन्ध में कहा जा सकता है। यह केवल नाममात्र की शक्ति है और यह भी मन्त्रियों के परामर्श से प्रयोग की जायेगी। जहां तक संसद् द्वारा पारित कानून को स्वीकृति प्रदान करने का सम्बन्ध है, मेरे विचार से मुझे रस्मी तौर पर स्वीकार किये हुये अनुच्छेदों की व्याख्या करके सभा का समय लेने की आवश्यकता नहीं है। चूंकि आप उनका संक्षेप से तथा अर्थपूर्ण और स्पष्ट रूप से उल्लेख कर रहे हैं इसलिये मेरे विचार से उनके उल्लेख की तो आवश्यकता है ही परन्तु अच्छा यह होगा कि उनकी परिभाषा कर दी जाये और उनका विस्तारपूर्वक उल्लेख किया जाये।

अब मैं स्वीकृति प्रदान न करने के अधिकार को लेता हूं। यह विचार किया जा सकता है कि यह मेरे ही मस्तिष्क की उपज है। मेरे विचार से इसमें कोई नई बात नहीं है क्योंकि कम से कम वैधानिक दृष्टि से जिस ढांचे पर यह विधान आधृत है अथवा आधृत-सा प्रतीत होता है, अर्थात् इंग्लैण्ड के विधान में सम्राट् के स्वीकृति प्रदान न करने के अधिकार को समाप्त नहीं किया गया है, यद्यपि लार्डस् सभा के सम्मति प्रदान न करने के अधिकार में परिवर्तन कर दिया गया है। वहां शताब्दियों से कई ऐसी प्रथायें चली आ रही हैं जिनसें सम्राट् के परमाधिकार से अथवा अन्य किसी प्रकार उस प्राधिकार के प्रयोग करने के सम्बन्ध में जो विधान की भावना तथा शब्दावली के प्रतिकूल न हो मन्त्रियों तथा लोगों का पथप्रदर्शन होता रहा है।

परन्तु यहां हम एक नया विधान बना रहे हैं और यहां एक राष्ट्रव्यापी जनतंत्र के युग का आरम्भ होने जा रहा है। आखिर आपको यह स्मरण रखना चाहिये कि

इंग्लैण्ड भारत का दसवां अथवा बारहवां हिस्सा भी नहीं है और जनसंख्या की दृष्टि से तो उसे पांचवां अथवा छटा हिस्सा कहा जा सकता है। इसलिये उस देश को अथवा वहां की प्रथाओं को देखते हुये जो कुछ उपयुक्त है वह हमारे लिये उपयुक्त नहीं हो सकता। कुछ भी हो उनकी प्रथाओं और रूढ़ियों का तो एक लम्बा इतिहास है। हमने उन प्रथाओं और रूढ़ियों को स्थापित करना है। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि हम सन्देह के लिये कोई स्थान न छोड़े और प्रधान को हम जो अधिकार दे रहे हैं उन्हें निश्चित और स्पष्ट कर दें।

जब तक आप निश्चित रूप से इसका उल्लेख न कर दें कि प्रधान को स्वीकृति प्रदान न करने का अधिकार नहीं है, स्वीकृति प्रदान करने के अधिकार के साथ स्वीकृति प्रदान न करने का अधिकार संलग्न है। किन्तु मैंने अपने संशोधन में इसका उल्लेख किया है कि किन दशाओं में स्वीकृति प्रदान न करने के अधिकार का अभिरक्षण हो सकता है। केवल एक ही बार स्वीकृति प्रदान न करने का अधिकार है। स्वीकृति प्रदान न करने पर भी यदि संसद् किसी कानून को उसी रूप में स्वीकार कर ले तो, चाहे प्रधान सहमत हो अथवा नहीं, वह कानून का रुप धारण कर लेगा। मेरे संशोधन के अनुसार प्रधान को केवल यह अधिकार प्राप्त होगा कि वह स्वीकृति प्रदान न करने के कारण बतायेगा। मेरे मतानुसार लोक-निर्वाचित होने के कारण वह लोगों के प्रति अपने उत्तरदायित्व की भावना से प्रेरित होकर उनके प्रतिनिधियों के सम्मुख अवश्य ही उन कारणों को रखेगा जिनके आधार पर उसने स्वीकृति प्रदान न की हो। मेरे विचार से यह सुझाव किसी प्रकार भी क्रान्तिपूर्ण नहीं कहा जा सकता है।

दूसरी नवीन बात लोकमत के सम्बन्ध में है। इस विधान में लोकमत के सम्बन्ध में कोई प्रावधान नहीं है, यद्यपि हम बार-बार लोगों की सर्वसत्ता की चर्चा करते हैं और यह कहते रहते हैं कि अन्ततोगत्वा लोग ही इस देश के सर्वोच्च प्रभु है। हमारे हृदय में लोकमत के लिये जो कुछ भी आदर हो उसे हम यदि कभी व्यक्त करते हैं तो वह पंचवर्षीय निर्वाचन के समय, संसद् के लिये आम चुनाव के समय ही व्यक्त करते हैं। किन्तु आम चुनाव के समय इतनी गुत्थियां उलझी रहती हैं और इतनी परस्पर विरोधी धारायें बहती रहती हैं और इतने प्रयत्न तथा प्रतिप्रयत्न होते रहते हैं कि इतने विभिन्न प्रश्नों पर लोगों की सम्मति अथवा उनका निर्णय केवल नाममात्र का ही होता है। मैं आशा करता हूं कि यह कह कर मैं किसी की भावनाओं का निरादर नहीं कर रहा हूं।

यदि आप सच्चे हृदय से और वास्तव में यह चाहते हैं कि लोग सर्वसत्ताधारी हों और यदि आप यह चाहते हैं कि प्रत्येक सद्यस्कृत्यस्थिति में, जब विधान-मण्डल

[प्रो. के.टी. शाह]

और अधिशासी-वर्ग के बीच मतैक्य न हो सके, लोगों से परामर्श लिया जाये तो इसकी कसौटी यह है कि आप लोगों से कितने शीघ्र परामर्श लेने के लिये तैयार हैं। यह हो सकता है कि सद्यस्कृत्यस्थिति इतनी गम्भीर हो कि आप संसद् को समाप्त नहीं कर सकते हैं। यह हो सकता है कि सद्यस्कृत्यस्थिति इस प्रकार की हो कि प्रधान अवकाश ग्रहण नहीं कर सकता है और त्यागपत्र नहीं देता है। अथवा यह भी हो सकता है कि मतभेद इतना कटु हो कि कोई भी पक्ष झुकने के लिये तैयार न हो। ऐसे अवसर पर उचित तो यही है कि केवल उस प्रश्न-विशेष पर लोगों का मत इस प्रकार लिया जाये कि वे निश्चित रूप से 'हां' या 'नहीं' कह सकें।

निश्चय ही विधान में लोगों की सर्वसत्ता सन्निहित होने की कसौटी यह नहीं है कि केवल मौखिक देशभक्ति प्रकट की जाये, जैसा कि इस मसौदे के शब्दों से प्रायः प्रतीत होता है। यह तर्क उपस्थित किया जा सकता है और वास्तव में जो लोग लोगों की सर्वसत्ता की यथार्थता अथवा नाममात्र के भी विरोध में थे उन्होंने यह तर्क उपस्थित भी किया है कि लोग तैयार नहीं रहते हैं अथवा यह कि वैदेशिक अथवा स्थानीय नीति सम्बन्धी जटिल प्रश्नों के सम्बन्ध में कोई निर्णायक सम्मति प्रदान करने के लिये वे पर्याप्त रूप से शिक्षित नहीं होते हैं। मुझे विश्वास है कि इस सभा में यह तर्क उपस्थित नहीं किया जायेगा। चाहे हम कितने ही पिछड़े हुये क्यों न हों, भले ही हममें से केवल दस अथवा बारह प्रतिशत लोग साक्षर हों और चाहे हमारी कमज़ोरियां और कठिनाइयां कितनी ही क्यों न हों, हमारा यह सच्चे हृदय से विश्वास है कि अन्ततोगत्वा सर्वसत्ता लोगों की ही है। जहां जन-समूह में बुद्धिमत्ता होती है तो वह वास्तविक मुक्ति का साधन बन जाती है। लोक-ध्वनि वास्तव में देव-ध्वनि ही है।

यह केवल कहावत-मात्र नहीं है और केवल बच्चों को लुभाने के लिये काम में नहीं लाई जाती है किन्तु गम्भीर विधान-निर्माताओं के लिये भी एक आदर्श है और उनको उसी के अनुरूप करना चाहिये। इसलिये मैं आपसे इस विषय पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने के लिये सच्चे हृदय से अनुरोध करता हूं। यदि आप यह निश्चय करें कि इस संशोधन के सम्बन्ध में अन्तिम रूप से निर्णय करने के पहले आप आपस में परामर्श करेंगे तो मैं इसे स्थगित करने के लिये तैयार हूं। परन्तु मेरा आपसे सच्चे हृदय से यह निवेदन है कि यदि आप लोगों को वास्तव में सर्वसत्ताधारी बनाना चाहते हैं और यदि आप उन्हें व्यावहारिक जनतंत्र की कला

को सिखाना चाहते हैं और यदि आप यह चाहते हैं कि सभी प्रश्नों के सम्बन्ध में अन्तिम रूप से वही निर्णय करें तो कृपा करके अपने दल के मत के अनुसार, चाहे वह ठीक हो या गलत, इस संशोधन का विरोध न कीजिये।

मैं इस सभा में प्रत्येक कारण से अथवा किसी भी कारण से विरोध करके एक निन्दित विरोधी का अभिनय करने के लिये इस सभा में उपस्थित नहीं हुआ हूं। मैं तो अपने को एक आलोचक मित्र समझता हूं और अपनी बुद्धि तथा योग्यता के अनुसार अपना रचनात्मक दृष्टिकोण उपस्थित करने के लिये हमेशा तैयार रहता हूं। यह हो सकता है कि वह किसी कारण से आपको स्वीकार्य प्रतीत न हो। परन्तु इस विषय के सम्बन्ध में मैं यह निवेदन करने का साहस करता हूं कि यदि वास्तव में आपका लोगों की सर्वसत्ता पर विश्वास है और यदि आप सच्चे हृदय से यह समझते हैं कि जनसाधारण ही हमारे वास्तविक भाग्यविधाता हैं तो आप इस संशोधन को ठुकरा नहीं सकते हैं। इसे केवल इस कारण से कि यह यथास्थान अथवा यथासमय उपस्थित नहीं किया गया है अथवा इसी प्रकार की कोई धोखे की टट्टी खड़ी करके अस्वीकार न कीजिये। मैं यह भी बता देना चाहता हूं कि इस संशोधन में यथोचित दशाओं और अभिरक्षणों का अभाव नहीं है ताकि यदि सर्वसत्ताधारी लोगों का परामर्श लिया गया और जब कभी भी वह लिया जाये तो वह केवल आकस्मिक निर्णय न हो बल्कि मतदाताओं के वास्तविक बहुमत का विचारपूर्ण निर्णय हो। इस दशा में यदि निर्णय गलत भी हुआ तो हम सब एक ही नाव में होंगे। अपने प्रभुओं के साथ तैर कर पार उतरने से अपने साथियों के साथ डूब जाना कहीं अच्छा है।

(संशोधन संख्या 1046 और 1047 उपस्थित नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 1048, जो मि. नज़ीरुद्दीन के नाम से है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 42 के खण्ड (3) के उपखण्ड (क) के स्थान पर निम्नलिखित रखा जाये:

'(a) be deemed to authorise or empower the President to exercise any power or perform any function which by any existing law is exercisable or performable by the Government of any State or by any other authority; or"

[(क) यह न समझा जायेगा कि प्रधान को किसी ऐसी शक्ति का प्रयोग करने अथवा किसी ऐसे प्रकार्य को करने की शक्ति अथवा प्राधिकार

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

है जो किसी वर्तमान कानून से किसी राज्य की सरकार द्वारा अथवा अन्य किसी प्राधिकारी द्वारा प्रयोग की जाती हो अथवा किया जाता हो; अथवा]

श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि इस संशोधन का प्रोफेसर के. टी. शाह द्वारा उपस्थित संशोधनों से बिल्कुल विपरीत प्रभाव पड़ेगा। इसका उद्देश्य प्रधान की शक्ति को इस अर्थ में सीमित करने का है कि यदि किसी शक्ति को कोई राज्य अथवा स्थानीय प्राधिकारी स्पष्टतया प्रयोग करता हो तो प्रधान को उस शक्ति को प्रयोग करने का अधिकार नहीं होगा। वास्तव में मैं यह चाहता हूं कि प्रधान सर्वथा वैधानिक प्रधान हो। यह बताया गया है कि इंग्लैण्ड में संसद में जो कानून बनाया जाता है वह इन शब्दों से आरम्भ होता है, "यह अधिनियम राजाधिराज श्रीमान् सम्राट् द्वारा इस संसद् में समवेत् धार्मिक तथा ऐहिक सामन्तों तथा साधारणजनों के परामर्श से बनाया जाता है" इत्यादि। श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि इससे सम्राट् को कोई शक्ति नहीं प्राप्त होती हैं। अंग्रेज़ बहुत ही कट्टर लोग हैं। वे पुरानी ही रीति-रिवाज के अनुसार चलते है। यद्यपि सम्राट् की शक्ति व्यवहार में बिल्कुल ही समाप्त हो गई है परन्तु पुरानी रीति का अनुसरण किया जाता है। इस रूढ़ि को यहां रखने का अर्थ यह होगा कि प्रधान को इसका पूर्ण अधिकार होगा कि वह अधिशासी-वर्ग पर छा जाये और बहुत अंश में विधान-मण्डल के निर्णय का तिरस्कार करे। इसलिये मेरे विचार से प्रधान की शक्तियां इतनी सीमित कर दी जानी चाहिये कि वह सच्चे अर्थ में केवल वैधानिक प्रधान ही हो। इस संशोधन का उद्देश्य यह है कि प्रधान उन शक्तियों का प्रयोग न करे जिन्हें प्रान्त अथवा स्थानीय तथा अन्य प्राधिकारी प्रयोग करते हों। इस संशोधन पर इसी दृष्टि से विचार होना चाहिये। मैं इस प्रस्ताव के गुण-दोषों पर अधिक विस्तार से नहीं बोलना चाहता हूं। यह एक दृष्टिकोण है और मेरा यह निवेदन है कि इस पर इस सभा में विचार किया जाये।

(संशोधन संख्या 1050 उपस्थित नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्ष:** इस अनुच्छेद पर अब सामान्य वादानुवाद हो सकता है।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मेरे माननीय मित्र प्रोफेसर के.टी. शाह ने जो संशोधन उपस्थित किया था उसका मैंने बड़ी सावधानी से अवलोकन किया तथा उनके भाषण को भी बहुत ध्यानपूर्वक सुना। इस सभा में विभिन्न प्रकार से अपना दृष्टिकोण उपस्थित करने

और समय-समय पर इस विधान के आधारभूत सिद्धान्तों को ही बदल कर उनको प्रविष्ट कराने के लिये जो प्रयास वे करते हैं उसकी मैं प्रशंसा करता हूं। श्रीमान्, उनके वर्तमान संशोधन को देखने से ज्ञात होगा कि बहुत से खण्डों का सम्बन्ध आधारभूत परिवर्तन से है और उनमें से कुछ तो वास्तव में विधान के प्रयोग में आने के बाद नियमों तथा आनियमों में प्रावहित किये जा सकते थे। श्रीमान्, इसके अतिरिक्त मैं अभी इस सभा को यह बताऊंगा कि यदि हम एक भिन्न प्रकार का विधान निर्माण करते तो उन्होंने इस संशोधन द्वारा जो सुझाव किये हैं वे किस प्रकार प्रशंसनीय तथा स्वीकार्य होते। परन्तु स्थिति यह है कि हमने जनतंत्रीय संसदात्मक शासन-प्रणाली को स्वीकार करने का निर्णय कर लिया है और यदि उनका प्रस्ताव स्वीकार किया गया तो उसे इस विधान के प्रावधानों में समुचित स्थान नहीं दिया जा सकता है।

उदाहरणार्थ प्रोफेसर शाह अपने संशोधन में यह कहते हैं कि प्रधान संघ के विधान-मण्डल के सम्मुख "कानून बनाने के लिये अथवा देश के सुशासन तथा सुयोग्य प्रशासन के लिये आवश्यक धन-राशि के लिये" कोई भी प्रस्ताव रख सकेगा। वे यह चाहते हैं कि प्रधान को ये शक्तियां प्राप्त हों। श्रीमान्, मैं यह जानना चाहता हूं कि यदि धन-व्यय करने की शक्ति प्रधान को दी गई तो यह किस प्रकार उस व्यवस्था के अनुरूप होगी जिसमें अधिशासी-वर्ग विधान-मण्डल के प्रति उत्तरदायी होता है। इस विधान-परिषद् के प्रारम्भिक अधिवेशन में पांच दिन के दीर्घकालीन वादानुवाद के उपरान्त हमने जिस आधारभूत सिद्धान्त को स्वीकार किया था उसका इससे निराकरण हो जाता है।

आगे वे कहते है, "अथवा देश की रक्षा के लिए अथवा संघ के किसी भाग में आकस्मिक विपत्ति के पड़ने पर प्रबन्ध के लिए अथवा किसी अन्य सद्यस्कृत्यस्थिति स्थिति के लिये।" हमारे विधान में सद्यस्कृत्यस्थिति के लिये प्रधान के लिये शक्तियां प्रावहित की गई हैं, परन्तु श्रीमान्, क्या मैं यह जान सकता हूं कि उत्तरदायी विधान-मण्डल के होते हुये क्या प्रोफेसर शाह यह चाहते हैं कि केवल प्रधान को ही युद्ध अथवा शांति घोषित करने का अधिकार प्राप्त हो? किसी भी उत्तरदायी संसदात्मक शासन-प्रणाली में यह व्यवस्था अवश्य ही आपत्तिजनक सिद्ध होगी। यदि युद्ध घोषित करना हो तो प्रधान को अवश्य ही इसकी शक्ति होगी क्योंकि हमारे विधान के अधीन वह रक्षा का सर्वोच्च अधिकारी है परन्तु उसे सभा को अपने साथ लेना होगा। सरकार को इस विषय पर विचार करना होता है। यदि यह खण्ड स्वीकार कर लिया गया और कोई स्वेच्छाचारी प्रधान यह कहता है कि देश की अथवा उसके पड़ोस की स्थिति को

[श्री आर.के. सिधवा]

दृष्टि में रखते हुए वह युद्ध घोषित करना चाहता है तो क्या यह उत्तरदायी सरकार कही जायेगी? श्रीमान्, कदापि नहीं।

इसके अतिरिक्त अपने संशोधन के खण्ड (ज) में वे कहते हैं कि जब संसद् की दोनों सभायें विधेयकों को स्वीकार कर लें तो वे प्रधान के पास भेजे जायेंगे। यह तो समझ में आने वाली बात है। फिर वे सभा के सम्मुख उपस्थित किये जायेंगे और वे यह चाहते हैं कि वे निश्चित बहुमत से स्वीकार किये जायें। इस सम्बन्ध में कोई विशेष आपत्ति नहीं हो सकती है परन्तु, श्रीमान्, यदि उनका खण्ड (1) स्वीकार कर लिया गया तो प्रधान और संसद् के बीच हमेशा जिच हो जायेगी और यदि इन सभी खण्डों को स्वीकार कर लिया गया तो इससे सरकार और प्रधान के बीच केवल कलह ही होगा। इस दशा में, श्रीमान् कौन यह चाहेगा कि प्रधान को अधिशासी शक्ति दी जाये। कम से कम हम तो यह नहीं चाहते हैं।

श्रीमान्, जहां तक शासन-प्रणाली का सम्बन्ध है, अमेरिका की शासन-प्रणाली के कुछ प्रावधान अच्छे हो सकते हैं परन्तु, श्रीमान्, मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि मैंने इस विषय पर मनन किया है कि हमारे देश के लिए कौन-सी शासन-प्रणाली उपयुक्त होगी और मैं इस निर्णय पर पहुंचा हूं कि रूस की शासन-प्रणाली को छोड़ कर, इंग्लैण्ड की संसदात्मक शासन-प्रणाली ही, जो वास्तव में जनतंत्रात्मक है, हमारे देश के लिये सबसे अधिक उपयुक्त होगी। इसके अतिरिक्त मैं यह पूछता हूं कि वैधानिक जनतंत्रात्मक शासन-प्रणाली में दोष ही क्या है? जिस प्रकार दलबन्दी के आधार पर हम निर्वाचन करते हैं उसी प्रकार इंग्लैण्ड में भी निर्वाचन होते हैं। प्रोफेसर शिब्बनलाल ने यह कहा था कि यद्यपि युद्धकाल में मि. चर्चिल सबसे अच्छे आदमी समझे जाते थे परन्तु निर्वाचकों ने उन्हें निकाल बाहर कर दिया। यह बिल्कुल ठीक है। मि. चर्चिल एक दल की ओर से खड़े हुये थे और युद्धकाल में वे सबसे अच्छे आदमी समझे गए परन्तु बहुमत ने उन्हें शांतिकाल के लिये स्वीकार नहीं किया। हमारे देश में भी यही हो सकता है। हमारे यहां भी दलबन्दी, निर्वाचन इत्यादि की व्यवस्था है। इसलिये श्रीमान्, मेरी यह धारणा है कि मेरे माननीय मित्र प्रोफेसर शाह ने जो संशोधन उपस्थित किये हैं वे बहुत अच्छे हो सकते हैं और इस सभा के सदस्यों को अपनी विचारधारा समझाने तथा स्वीकार करने के लिए उन्होंने जो प्रयास किया है वह प्रसंशनीय है—इस सम्बन्ध में उनकी सच्चाई के बारे में मुझे कुछ भी सन्देह नहीं

है—परन्तु मैं यह कहूंगा कि इस सभा ने यह निर्णय किया है कि एक विशेष प्रकार की शासन-प्रणाली ही उपयुक्त होगी और इसलिये, श्रीमान्, ये संशोधन इस विधान की रूपरेखा में बेमेल लगेंगे और इस कारण प्रविष्ट नहीं किये जा सकते हैं। मैं यह अनुभव करता हूं कि उनमें से कुछ अच्छे हो सकते हैं किन्तु सभा ने एक प्रकार की शासन-प्रणाली के सम्बन्ध में निर्णय कर लिया है। इस कारण मैं प्रोफेसर के. टी. शाह द्वारा प्रस्तावित संशोधनों का विरोध करता हूं।

***श्री जगत नारायण लाल** (बिहार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं अवश्य ही प्रोफेसर के.टी. शाह द्वारा उपस्थित संशोधन के पक्ष में मत देना चाहता, परन्तु मैं यह अनुभव करता हूं कि जहां तक हमारे देश में जनतंत्रात्मक शासन-प्रणाली को स्थापित करने का सम्बन्ध है वह उस विचारधारा के विपरीत है जिसे इस सभा ने स्वीकार किया है। यह स्पष्ट है कि प्रोफेसर शाह की यह अटल धारणा है कि भारतीय संघ के प्रधान की वही शक्तियां और प्राधिकार हों जो अमेरिका के गणराज्य के प्रधान के हैं। यदि मैं उनके उद्देश्य को ठीक समझा हूं और यही उनका उद्देश्य है तो इससे हम सभी सहमत होंगे कि यह विचारधारा हमको मान्य नहीं है। जहां तक हमारे विधान का सम्बन्ध है, उसमें हम अपने प्रधान को जो शक्तियां देने जा रहे हैं वे बहुत कुछ आयरलैण्ड के गणराज्य के प्रधान की शक्तियों के समान हैं। इस सम्बन्ध में हमारे सामने कई उदाहरण हैं। सबसे हाल का उदाहरण आयरलैण्ड के प्रधान और उसकी शक्तियों का हैं। जहां तक इंग्लैण्ड का सम्बन्ध है हम सभी जानते हैं कि वहां का सम्राट् वहां का वैधानिक प्रमुख है और वहां प्रधान की कोई व्यवस्था नहीं है। उसकी कुछ शक्तियां तथा अधिकार हैं और वहां कुछ प्रथायें भी हैं। फ्रांस के प्रधान की जो शक्तियां हैं वे केवल नाममात्र की हैं। वह बहुत कुछ नाममात्र की ही प्रमुख है। वैमार के विधान के अधीन सभापति प्रधान की बहुत सी शक्तियां थीं परन्तु हम यह देखते हैं कि सभा-पति-प्रधान को भी अर्थात् राइख के प्रधान को भी युद्ध की घोषणा करने के लिये मन्त्रियों की ओर राइख की भी स्वीकृति लेनी होती थी। सन्धियां करने और सम्बन्ध स्थापित करने में भी उसको उनकी स्वीकृति लेनी होती थी। परन्तु प्रोफेसर शाह के प्रस्ताव में इससे भी अधिक शक्तियां प्रदान की गई हैं। वे कहते हैं कि वह युद्ध तथा सन्धि की घोषणा भी कर सकता है। वे इसे बिल्कुल ही स्पष्ट कर देना चाहते हैं और यह भी चाहते हैं कि यह किसी प्रथा पर निर्भर न रहे बल्कि विधान ही में प्रावहित किया जाये। यदि यह युद्ध अथवा संधि घोषित करेगा तो वह परामर्श ले सकता है और वास्तव में वह परामर्श लेगा ही, परन्तु वे इसे विधान में प्रावहित करना नहीं चाहते हैं। इसलिये, श्रीमान्, मैं यह अनुभव करता हूं कि प्रोफेसर शाह से सहमत होना सम्भव नहीं है। भारतीय संघ के प्रधान

[श्री जगत नारायण लाल]

को जो शक्तियां दी जाने वाली हैं उनके सम्बन्ध में उनके दृष्टिकोण तथा हमारे दृष्टिकोण में आधारभूत अन्तर है। मेरी यह धारणा है कि वे अमेरिका की प्रणाली का अनुसरण करना चाहते हैं परन्तु हमारा यह विचार है कि हम प्रधान को उस प्रणाली के आधार पर नहीं बल्कि आयरलैण्ड के गणराज्य की प्रणाली के आधार पर शक्तियां प्रदान करना चाहते हैं।

श्रीमान्, मैं वादानुवाद को बढ़ाना नहीं चाहता। मैं समाप्त कर चुका हूं।

***श्री के.एम. मुन्शी** (बम्बई : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मुझसे पहले बोलने वाले वक्ता इस ओर ध्यान दिला चुके हैं कि मेरे माननीय मित्र प्रोफेसर के. टी. शाह ने इस अनुच्छेद तथा समनुवर्त्ती अनुच्छेदों के सम्बन्ध में जो संशोधन उपस्थित किये हैं उनसे उस सारे वैधानिक ढांचे में ही आधारभूत परिवर्तन हो जायेगा जिसे हमने पिछले सवा वर्ष के वादानुवाद के उपरान्त स्वीकार किया है। जब संघीय विधान-समिति अपना कार्यारम्भ कर रही थी तो यह निर्णय किया गया था और मेरे विचार से इस सम्बन्ध में सम्भवत: एक या दो सदस्यों ने मतभेद भी प्रकट किया था कि हमारी केन्द्रीय सरकार इंग्लैण्ड की प्रणाली पर आधृत होनी चाहिये और दो मुख्य कारणों से अमेरिका की अथवा संयुक्त राज्य अमेरिका की प्रणाली का परित्याग किया जाना चाहिये। जो दो प्रश्न इस सभा के सम्मुख अथवा विभिन्न समितियों के सम्मुख उपस्थित किये गये थे वे ये हैं : जनतंत्रात्मक वैधानिक ढांचे का बिना उल्लंघन किये हुये किस प्रकार एक शक्तिशाली अधिशासी-वर्ग का निर्माण किया जा सकता है और यह कि किस प्रकार का अधिशासी-वर्ग इस देश के लिये उपयुक्त होगा? मेरी समझ में नहीं आता कि इन दृष्टिकोणें को सामने रखते हुये यह सभा मेरे मित्र के संशोधनों से कैसे सहमत हो सकती है।

मेरे माननीय मित्र का शक्तियों के पृथक्करण के सम्बन्ध में एक संशोधन इस सभा के सम्मुख रखा जा चुका है और वह अस्वीकार भी हो चुका है। जिसका विस्मरण न होना चाहिये कि अमेरिका का विधान बहुत पहले 18वीं शताब्दी में बनाया गया था। उसके निर्माताओं का पथप्रदर्शन मान्टेन के इंग्लैण्ड के विधान के निर्वचन से हुआ था जिसमें इंग्लैण्ड की शक्तियों की पृथक्करण की प्रणाली का उल्लेख है। उनका यही विचार रहा कि वे मान्टेन के विश्लेषण को एक वैधानिक ढांचे का स्वरूप दे रहे हैं। अमेरिका के विधान में प्रधान को जो शक्तियां दी गई थीं उनका आधार, जैसा कि इस समय समझा जाता है 18वीं शताब्दी में इंग्लैण्ड के विधान का भ्रमपूर्ण पाठ ही था।

जैसा कि मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर बता चुके हैं, अमेरिका में भी शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धान्त का अनुसरण करना असम्भव हो गया है। हम जानते हैं कि अमेरिका का विधान उतनी अच्छी प्रकार व्यवहार में नहीं है जैसे इंग्लैण्ड का विधान और इसका यही कारण है कि उस देश में मुख्य अधिशासक विधान-मण्डल से पृथक् है। सबसे शक्तिशाली सरकार और सबसे लचीला अधिशासी-वर्ग इंग्लैण्ड का ही देखा गया है और इसका कारण यह है कि अधिशासी शक्तियां मंत्रिमण्डल में निहित होती हैं और उसे अवर-सभा के बहुमत का समर्थन प्राप्त होता है जिसे विधान के अधीन अर्थ-सम्बन्धी शक्तियां प्राप्त होती हैं। इसके फलस्वरूप विधान-मण्डल में बहुमत का प्रभुत्व होता है और इसका कारण यह है कि वह मन्त्रिमण्डल के नेताओं का समर्थन करता है जो राज्य के प्रमुख अर्थात् सम्राट् या प्रधान को परामर्श देते हैं। इस प्रकार सम्राट् अथवा प्रधान का किसी दल से कोई सम्बन्ध नहीं रहता है। वह वास्तव में विधान की निरपेक्ष महानता का प्रतीक बना दिया जाता है। इसका यह परिणाम हुआ है कि इंग्लैण्ड की सरकार सभी परिस्थितियों में शक्तिशाली और लचीली सिद्ध हुई है। इस समय इंग्लैण्ड में मन्त्रिमण्डल की शक्ति संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रधान की शक्ति से किसी प्रकार कम नहीं है। प्रधान-मंत्री तथा मन्त्रिमण्डल के सभी मन्त्रियों के विधान-मण्डल के सदस्य होने के कारण अधिशासी-वर्ग और विधान-मण्डल के बीच कलह की इतनी कम सम्भावना है कि वह नगण्य ही है क्योंकि मन्त्रिमण्डल तभी पदारूढ़ रह सकता है जब उसे संसद् में बहुमत का समर्थन प्राप्त हो। इंग्लैण्ड के विधान की इस विशेषता के कारण ही पिछले 150 वर्षों में बहुत-सी कठिन परिस्थितियां उपस्थित होने पर थी ब्रिटिश सरकार अपना रथ आगे बढ़ाती रही है। इसलिये अमेरिका के ढंग के अधिशासी-वर्ग और इंग्लैण्ड के ढंग के अधिशासी-वर्ग के बीच किसी प्रकार की तुलना ही नहीं हो सकती। सभी लोगों ने और अमेरिका के प्रमुख वैधानिक विशेषज्ञों ने भी यह स्वीकार किया है कि आधुनिक काल के लिये इंग्लैण्ड के ढंग का अधिशासी-वर्ग ही उत्तम है।

इसके अतिरिक्त सभा ने इस प्रश्न पर भी विचार करना है कि कौन-सी प्रणाली भारत के लिये सबसे उपयुक्त होगी। हमें उस बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात को न भूलना चाहिये कि पिछले सौ वर्षों में भारतीय सार्वजनिक जीवन में अधिकतर इंग्लैण्ड के वैधानिक कानून का अनुसरण किया जाता रहा है। हममें से अधिकांश लोग और भारत के सार्वजनिक नेता कई पीढ़ियों से इंग्लैण्ड की प्रणाली को ही सबसे अच्छा समझते आये हैं। पिछले तीस या चालीस वर्षों से इस देश के शासन में एक प्रकार के उत्तरदायित्व का समावेश हुआ है। हमारी

[श्री के.एम. मुन्शी]

वैधानिक परम्परा संसदात्मक हो चली है और इस समय हमारे सभी प्रान्त बहुत कुछ इंग्लैण्ड की प्रणाली का ही अनुसरण कर रहे हैं। वास्तव में आज भारत की औपनिवेशिक सरकार पूर्णतया संसदात्मक सरकार के रूप में काम कर रही है। इतना अनुभव प्राप्त करने के उपरान्त हम एक सौ वर्षों के प्रयास के फलस्वरूप निर्माण की हुई परम्परा को ही उलट कर एक ऐसे नये प्रयोग को क्यों करना चाहते हैं जो, जैसा कि मैं कह चुका हूं, 150 वर्ष पूर्व आरम्भ किया गया था और जिसकी त्रुटियों का अनुभव अमेरिका में ही हो चुका है? इसलिये मेरा यह निवेदन है कि प्रोफेसर शाह ने अपने संशोधनों द्वारा जिस योजना का प्रस्ताव किया है उसे इस सभा ने अभी तक स्वीकार नहीं किया है और उससे अन्य देशों में भी सर्वोत्कृष्ट फल प्राप्त नहीं हुये हैं और वास्तव में वह उस परम्परा के विरुद्ध है जिसका निर्माण भारत में हुआ है। इसलिये श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि इस संशोधन को अस्वीकार कर देना चाहिये।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, यदि यह सभा प्रोफेसर शाह के संशोधन को स्वीकार कर ले तो इसका अर्थ यह होगा कि प्रोफेसर शाह के बताये हुये कारणों के अनुसार यह सभा उस निर्णय को ही उलट देगी जिसे विभिन्न समितियों ने और विधान-परिषद् ने बहुत वादानुवाद के उपरान्त पहले कई अवसरों पर किया था।

इस प्रश्न के अतिरिक्त, कि गम्भीरतापूर्वक जो निर्णय किया गया है उसका निराकरण हो जायेगा, कई ऐसे महत्त्वपूर्ण कारण हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस देश के लिये साधारणतया तथाकथित प्रधानमूलक शासन-प्रणाली से मंत्रिमडल-मूलक शासन-प्रणाली अधिक श्रेयस्कर होगी। प्रथम तो विचार यह है कि विभिन्न प्रदेशों, प्रान्तों और राज्यों को संधान में समाविष्ट किया जाये। इस समय विभिन्न राज्यों में नरेशों का अस्तित्व मिटा देने का कोई विचार नहीं है। यदि आप केन्द्र में प्रधान-मूलक शासन-व्यवस्था स्थापित कर दे तो हम राज्यों के सम्बन्ध में क्या करेंगे? क्या इसका अर्थ यह है कि राज्यों में नरेशों को फिर वास्तविक अधिशासी शक्ति प्रदान की जायेगी और विधान-मण्डलों को केवल कानून बनाने का काम सौंपा जायेगा? यह समय की गति के विरुद्ध होगा। इससे भारतीय राज्यों में बड़ी दुर्गम स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। यह एक विचारणीय प्रश्न है।

दूसरा प्रश्न यह है कि जहां तक भारत के प्रान्तों का सम्बन्ध है हम कई वर्षों से बहुत कुछ मन्त्रिमण्डल-मूलक शासन-प्रणाली का अनुसरण करते रहे हैं। हम

उसी ढांचे के अन्दर काम करते हैं। उसके पूर्व कुछ समय तक द्विविध शासन-प्रणाली प्रयुक्त थी। कुछ समय से भारत के विभिन्न प्रदेशों में हम उत्तरदायी शासन को प्रयोग में लाये हैं। अमेरिका की प्रधान-मूलक शासन-प्रणाली पर विचार करते समय यह स्मरण रखना चाहिये कि वहां प्रधान-मूलक शासन-प्रणाली केवल केन्द्र में ही प्रयुक्त नहीं है बल्कि विभिन्न राज्यों में भी प्रयुक्त है। इस पर भी विचार करने की आवश्यकता है कि किस ऐतिहासिक परिस्थिति के वश अमेरिका में प्रधान-मूलक शासन-प्रणाली अपनायी गई थी और प्रयोग में लाई गई थी। जार्ज तृतीय का अविश्वास, विद्रोह को घटित करने वाली परिस्थितियां, संसद् तथा अधिशासी-वर्ग के बीच निरन्तर कलह और अधिकारों के लिये प्रार्थना-पत्र तथा अधिकार-पत्र का पूर्व इतिहास, मुख्यत: इन सब बातों के कारण ही अमेरिका में प्रधान-मूलक शासन-प्रणाली स्थापित हुई। इनके अतिरिक्त विधान-मण्डल और अधिशासी-वर्ग के प्रकार्यों के पृथक्करण के सम्बन्ध में मान्टेस्को तथा अन्य अग्रगण्य राजनैतिक विचारकों ने जो सिद्धान्त प्रतिपादित किये थे उनका भी इस निश्चय में योग रहा। साथ ही प्रधान-मूलक शासन-प्रणाली को व्यवहार में लाने में स्पष्टत: कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। जब तक विधान-मण्डल और अधिशासी-वर्ग के घनिष्ट न होंगे तो अवश्य ही लूट की एक प्रथा स्थापित हो जायेगी। आयव्ययक को कौन स्वीकृति प्रदान करेगा? विशेष नीतियों को कौन स्वीकृति प्रदान करेगा? संसद् एक प्रकार की कार्य-शैली का अनुसरण कर सकती है और अधिशासी-वर्ग एक दूसरी प्रकार की कार्यशैली का अनुसरण कर सकता है। वर्तमान परिस्थिति में कोई ऐसा जनतंत्र, जो अपनी शैशवावस्था में हो, विधान-मण्डल और अधिशासी-वर्ग के बीच निरन्तर मतभेद, वैमनस्य तथा कलह अथवा कलह के आतंक को सहन नहीं कर सकता है। विधान की वर्तमान रूपरेखा इस उद्देश्य से निश्चित की गई है कि विधान-मण्डल और अधिशासी-वर्ग के बीच कलह न हो और शासन के विभिन्न अंगों के बीच सामंजस्य उत्पन्न हो। विधान का यही मुख्य उद्देश्य होता है। इन्हीं कारणों से प्रेरित होकर इस सभा ने तथा विभिन्न समितियों ने प्रधान-मूलक शासन-प्रणाली से मन्त्रिमण्डल-मूलक शासन-प्रणाली को अधिक श्रेयस्कर समझा और उसे अपनाया। मन्त्रिमण्डल-मूलक शासन-प्रणाली का गुणगान करने की आवश्यकता नहीं है। बेजहाट के शब्दों में मन्त्रिमण्डल, विधान मण्डल तथा अधिशासी-वर्ग का गठबन्धन करता है। वर्तमान परिस्थिति में हमारे देश के लिये, जब कि हमारा जनतंत्र अभी शैशवावस्था ही में है, यह आवश्यक है कि विधान-मण्डल तथा अधिशासी-वर्ग के बीच घनिष्ट सम्बन्ध हों। इन कारणों से

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

ही संघीय विधान समिति तथा इस सभा ने मन्त्रिमण्डल-मूलक शासन-प्रणाली को अंगीकार किया। ऐतिहासिक कारणों से ही अमेरिका में प्रधान- मूलक शासन-प्रणाली बहुत सफल रही है। निस्सन्देह वहां प्रधान बहुत ही सम्मान का पात्र है परन्तु इसका कारण केवल प्रधान-मूलक शासन-प्रणाली ही नहीं है बल्कि अमेरिका का धन-संचय भी है। इन्हीं कारणों से मैं विधान का उसके वर्तमान रूप में समर्थन करता हूं और प्रोफेसर शाह के संशोधन का विरोध करता हूं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मुझे खेद है कि जो संशोधन उपस्थित किये गये हैं उनमें से मैं किसी को भी स्वीकार नहीं कर सकता हूं। जहां तक इस खण्ड पर सामान्य विचार-विमर्श का सम्बन्ध है मेरे विचार से मेरे मित्र श्री मुन्शी और श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने जो कुछ कहा है उससे अधिक व्याख्या करने से कुछ लाभ न होगा।

***उपाध्यक्ष:** मैं संशोधनों पर एक-एक करके मत लूंगा। संशोधन संख्या 1040 का प्रथम भाग। प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 42 के खण्ड (1) के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'(1) The sovereign executive power and authority of the Union shall be vested in the President, and shall be exercised by him in accordance with the Constitution and in accordance with the laws made thereunder and in force for the time being.' "

[(1) संघ की सार्वभौम अधिशासी शक्ति तथा प्राधिकार प्रधान में सन्निहित होंगे और वह उन्हें विधान के अनुसार और उसके अधीन बनाये हुये तथा समय प्रयुक्त कानूनों के अनुसार प्रयोग में लायेगा।]

प्रस्ताव गिर गया।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं संशोधन संख्या 1040 के दूसरे भाग पर मत लूंगा। प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 42 के खण्ड (1) के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'(1) The executive authority, power and functions of Government shall be vested in the President, and shall be exercised by him in accordance with the

Constitution and the law with the advice and help of such ministers, officers or servants of the State as may be deemed necessary for him.' "

[(1) सरकार का अधिशासी-प्राधिकार, शक्ति और प्रकार्य प्रधान में सन्निहित होंगे और वह उन्हें विधान तथा कानून के अनुसार ऐसे मन्त्रियों, राज्य के अधिकारियों अथवा कर्मचारियों के परामर्श से प्रयोग में लायेगा जिन्हें वह आवश्यक समझे।]

प्रस्ताव गिर गया।

***उपाध्यक्ष:** मैं संशोधन संख्या 1042 पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है कि :

"अनुच्छेद 42 के खण्ड (1) में 'and may' (हिन्दी में 'और वह') शब्दों के बाद 'on behalf of the people of India' (भारत के लोगों की ओर से) शब्द रखे जायें।"

प्रस्ताव गिर गया।

***उपाध्यक्ष:** मैं संशोधन संख्या 1042 पर मत लेता हूं। प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 42 के खण्ड (2) के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'(2) Without prejudice to the generality of the foregoing provision and in accordance with this Constitution and the laws made thereunder for the time being in force, the President shall—

(a) convene or dissolve the Legislature of the Union' and place before it any proposal for legislation or for sums of money needed for the good government and efficient administration of the country, or for its defence, or to provide for any sudden calamity in any part of the Union or any other emergency;

(b) have the power to assent to the laws duly passed by the Union Legislature;

(c) conduct and supervise any Referendum that may be decided upon to make to the Sovereign People in accordance with this Constitution;

[उपाध्यक्ष]

(d) have the power to declare war, and make peace;

(e) be the supreme commander of all the armed forces of the Union;

(f) appoint all other executive and judicial officers, including the ministers, representatives of the Union in foreign countries as ambassadors, ministers, consuls, trade commissioners and the like; as well as the commanding officers in the armed forces of the Union;

(g) do all acts exercise all powers and discharge all authority necessary or incidental to the power and authority vested in him by and under this Constitution;

(h) have power to refuse assent to any legislative proposal passed by both Houses of Parliament; or to recommend to Parliament that any legislative proposal passed by Parliament be reconsidered for reasons stated by the President, provided that any legislative proposal duly passed by Parliament, if refused assent by the President only once; and that the same proposal if passed in an identical form by Parliament in the next following sessions of that body, shall be deemed to have been duly passed and become an Act of the Legislature, notwithstanding that the President has refused or continues to refuse to assent thereto;

(i) in every case in which the President refuses to assent to any legislative proposal duly passed by Parliament, the President shall record his reasons for refusing to assent and shall forward the reasons thus recorded to Parliament;

(j) in any case where the President, having duly submitted to Parliament, or to the People's House thereof, a legislative proposal he deems necessary

for the safety of the State, its integrity or defence or to safeguard the nation's interests in a national emergency, finds that Parliament is unwilling to consider or pass that proposal, may refer such a proposal to the people of the country; and if the proposal is approved, on such reference, by a majority of not less than two-thirds of the citizens voting, it shall forthwith become a law of the land. If on such reference the proposal is not approved by the requisite majority, it shall be deemed to have been negatived, and shall be treated as void and have no effect."

[(2) पूर्वगामी प्रावधान की व्यापकता पर बिना विपरीत प्रभाव डाले हुये और इस विधान और उसके अधीन बनाये हुये तथा इस समय प्रयुक्त कानूनों के अनुसार प्रधान को–

(क) संघ के विधान-मण्डल को आरम्भ करने अथवा समाप्त करने और उसके सम्मुख कानून बनाने के लिये अथवा देश के सुशासन तथा सुयोग्य प्रशासन के लिये आवश्यक धन-राशि के लिये अथवा देश की रक्षा के लिये अथवा संघ के किसी भाग में आकस्मिक विपत्ति के पड़ने पर प्रबन्ध के लिये अथवा किसी अन्य सद्यस्कृत्यस्थिति के लिये कोई भी प्रस्ताव रखने का अधिकार होगा;

(ख) संघीय विधान-मण्डल द्वारा यथाविधि पारित कानूनों के लिये अपनी स्वीकृति प्रदान करने की शक्ति होगी;

(ग) यदि इस विधान के अनुसार सर्वसत्ताधारी लोगों का मत लेने का निश्चय किया गया तो उसका संचालन तथा निरीक्षण करने का अधिकार होगा;

(घ) युद्ध अथवा शान्ति घोषित करने का अधिकार होगा;

(ङ) संघ की सभी सशस्त्र सेनाओं का सर्वोच्च सेनानायक होने का अधिकार होगा;

(च) अन्य सभी अधिशासी अधिकारियों और न्यायाधिकारियों को, जिनमें मन्त्री और विदेशों में संघ के प्रतिनिधि, जैसे अम्बेसेडर, मिनिस्टर,

कांसल, व्यापारिक कमिश्नर आदि भी सम्मिलित हैं, तथा संघ की सशस्त्र सेना के सेनानायकों को नियुक्त करने का भी अधिकार होगा;

(छ) इस विधान द्वारा तथा इसके अधीन उसमें निहित शक्ति और प्राधिकार के अनुरूप तथा आनुषंगिक सभी शक्तियों और प्राधिकार को प्रयोग करने और सभी कार्य करने का अधिकार होगा;

(ज) संसद् की दोनों सभाओं द्वारा पारित किसी वैधानिक प्रस्थापना को अस्वीकार करने की शक्ति होगी अथवा संसद् से यह सिफारिश करने की शक्ति होगी कि उसके पार की हुई किसी वैधानिक प्रस्थापना पर प्रधान के बताये हुये कारणों से पुनर्विचार किया जाये परन्तु संसद् द्वारा यथाविधि पार की हुई किसी वैधानिक प्रस्थापना को यदि प्रधान अस्वीकार करे तो केवल एक बार करेगा और यदि अगले अधिवेशन में संसद् उसी प्रस्थापना को उसी रूप में पार कर दे तो वह यथाविधि पार किया हुआ समझा जायेगा और विधान-मण्डल का अधिनियम हो जायेगा चाहे प्रधान ने उसे स्वीकृति प्रदान न की हो और न प्रदान करने के लिये सहमत हो;

(झ) संसद् द्वारा यथाविधि पारित वैधानिक प्रस्थापना को यदि प्रधान स्वीकृति प्रदान करने के लिये सहमत न हो तो प्रधान उसके कारणों का उल्लेख करेगा और इस प्रकार उल्लिखित कारणों को संसद् के पास भेजेगा;

(ञ) यदि प्रधान संसद् के सम्मुख अथवा उसकी लोक-सभा के सम्मुख कोई ऐसी वैधानिक प्रस्थापना यथाविधि रखे जो वह देश के क्षेम, सुव्यवस्था अथवा रक्षा के हित में अथवा किसी राष्ट्रव्यापी सद्यस्कृत्यस्थिति के उपस्थित होने पर राष्ट्र के हितों के रक्षार्थ आवश्यक समझे और यह देखे कि संसद् उस प्रस्थापना को पार करने अथवा उस पर विचार करने के लिये सहमत नहीं है तो वह उस प्रस्थापना को देश के लोगों के सम्मुख रख सकता है और यदि ऐसा करने पर वह प्रस्थापना मत देने वाले कम से कम दो तिहाई नागरिकों के बहुमत से स्वीकार कर ली जाये तो वह तत्काल ही देश का कानून हो जायेगा। किन्तु इस प्रकार लोगों के सम्मुख रखने पर यदि वह प्रस्थापना निश्चित बहुमत से स्वीकार न हुई तो यह समझा

जायेगा कि वह अस्वीकार हो गई है और यह भी समझा जायेगा कि उसका शून्यन हो गया है और उसका कोई प्रभाव न होगा।]

प्रस्ताव गिर गया।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं संशोधन संख्या 1048 पर मत लेता हूं।

प्रस्ताव यह है कि :

"अनुच्छेद 42 के खण्ड (3) के उपखण्ड (क) के स्थान पर निम्नलिखित रखा जाये:

'(a) be deemed to authorise or empower the President to exercise any power or perform any function which by any existing law is exercisable or performable by the Government of any State or by any other authority; or' "

[(क) यह न समझा जायेगा कि प्रधान को किसी ऐसी शक्ति का प्रयोग करने अथवा किसी ऐसे प्रकार्य को करने की शक्ति अथवा प्राधिकार है जो किसी वर्तमान कानून से किसी राज्य की सरकार द्वारा अथवा अन्य किसी प्राधिकारी द्वारा प्रयोग की जाती हो अथवा किया जाता हो; अथवा]

प्रस्ताव गिर गया।

***उपाध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 42 विधान का अंग बना लिया जाये।"

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

अनुच्छेद 42 विधान का अंग बना लिया गया।

अनुच्छेद 43

***उपाध्यक्ष:** हमारे पास अब भी बारह मिनट से कुछ अधिक समय है और मेरा यह विचार है कि आगे का अनुच्छेद उठा लिया जाये।

प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 43 विधान का अंग बना लिया जाये।"

संशोधन संख्या 1051, श्री दामोदरस्वरुप!

***श्री दामोदर स्वरूप सेठ** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

[श्री दामोदर स्वरूप सेठ]

"अनुच्छेद 43 और 44 के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'The President shall be elected by means of the single transferable vote by an electoral college composed of the members of Parliament and an equal number of persons elected by the Legislatures of the States on population basis under the system of single transferable vote.' "

(प्रधान का निर्वाचन एकल संक्राम्य मत से एक निर्वाचक-निकाय करेगा जिसमें संसद् के सदस्य होंगे और उतनी ही संख्या में राज्यों के विधान-मण्डलों द्वारा जनसंख्या के आधार पर एकल संक्राम्य मत-प्रणाली के अनुसार निर्वाचित लोग होंगे।)

श्रीमान्, अनुच्छेद 43 भारतीय संघ के प्रधान के निर्वाचन तथा संसद् की दोनों सभाओं के सदस्यों और राज्यों के विधान-मण्डलों के निर्वाचित सदस्यों के निर्वाचक-निकाय के सम्बन्ध में है और अनुच्छेद 44 में राज्यों के प्रतिनिधियों के निर्वाचन की प्रणाली का ब्यौरा दिया हुआ है। जहां तक एकल-संक्राम्य मत द्वारा अनुपाती प्रतिनिधित्व की प्रणाली का सम्बन्ध है, मेरे विचार से इस सभा का प्रत्येक सदस्य उसका स्वागत करेगा। परन्तु जहां तक राज-परिषद् के सदस्यों और राज्यों की विधान-परिषदों के सदस्यों को सम्मिलित करने का प्रश्न है मैं प्रधान के निर्वाचन में इनको सम्मिलित करने के विरोध में हूं। श्रीमान्, यही नहीं मैं इस विधान में इन सभाओं की ही व्यवस्था करने के विरोध में हूं। श्रीमान्, संधानीय राज-व्यवस्था में अथवा किसी उत्कृष्ट जनतंत्रात्मक विधान में द्विवेश्म विधान-मण्डलों का निर्माण करना अब आवश्यक नहीं समझा जाता है। यदि इसके सम्बन्ध में और अधिक कुछ न कहा जाये तो इतना तो कहा ही जा सकता है कि यह उन्नति को अवरुद्ध करने के लिये कट्टरपन्थी का एक साधन है। श्रीमान्, प्रोफेसर लास्की ने ठीक ही कहा है कि संधान के किसी प्रदेश के रक्षार्थ एक दूसरी सभा के कवच की आवश्यकता नहीं है। विधान में शक्ति-विभाजन की जो व्यवस्था होती है और न्यायालयों द्वारा न्याय-सम्बन्धी पुनर्विचार का जो अधिकार प्रावहित होता है उससे संधान के सभी प्रदेशों को पर्याप्त संरक्षण प्राप्त हो जाता है। श्रीमान्, सभी संधानीय राज्यों में विधान-मण्डलों की दोनों सभाओं में दलबन्दी की प्रणाली का अनुसरण किया जाता है और दूसरी सभा के सदस्य भी दलों के आधार पर निर्वाचित होते हैं। यही नहीं वे अवर सभा के सदस्यों के समान अपने दल के

निर्देशानुसार कार्य करते हैं और मत देते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि दो सभाओं में राष्ट्रीय दलों की सदस्य-संख्या भिन्न होती है किन्तु सदस्य-संख्या के इस अन्तर के कारण केवल गड़बड़ और गतिरोध ही होता है। संधानीय विधान-मण्डल की दो विभिन्न सभाओं को भी प्रादेशिक अथवा राष्ट्रीय हितों के संरक्षण का काम सौंपना भी बुद्धिमानी नहीं है और न इन हितों का संरक्षण करके दूसरी सभाओं ने अपनी सार्थकता सिद्ध की है। राष्ट्रीय और प्रादेशिक हितों के सम्बन्ध में दोनों सभाओं के सदस्यों की लगभग एक ही प्रकार की भावनायें रहती हैं। संधान में सम्मिलित होने वाले प्रदेशों का राजनैतिक इकाइयों के रूप में, स्थानीय अधिशासी-वर्ग के मनोनीतकरण से अथवा प्रदेशों के विधान-मण्डलों द्वारा निर्वाचन से प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त को भी आधुनिक विचारकों ने समीचीन नहीं ठहराया है। व्यवस्था यह है कि यद्यपि राज-परिषद् के अधिकांश सदस्य व्यवहित निर्वाचन द्वारा चुने जायेंगे किन्तु कुछ का मनोनीतकरण भी होगा। श्रीमान्, मनोनीतकरण की प्रणाली जनतंत्र के विरुद्ध है और प्रोफेसर लास्की के शब्दों में व्यवहित निर्वाचन की प्रणाली सबसे अधिक दूषित है और उससे भ्रष्टाचार अपनी पराकाष्ठा को पहुंच जाता है। श्रीमान्, जहां तक अनुच्छेद 44 में और उसके नीचे दी हुई व्याख्या में वर्णित निर्वाचन-प्रणाली के ब्यौरे का सम्बन्ध है, मेरा यह निवेदन है कि वह केवल भ्रामक ही नहीं है बल्कि जटिल भी है और उससे राज्य के प्रतिनिधित्व में एकरूपता नहीं आती है। इसके विपरीत, श्रीमान्, मेरे संशोधन में बहुत ही सरल प्रणाली का सुझाव रखा गया है जो न केवल बिना किसी कठिनाई के प्रयोग में लाई जा सकती है बल्कि जिससे राज्य के प्रतिनिधित्व में एकरूपता भी आ सकती है। इसलिये मुझे आशा है कि यह सभा मेरे संशोधन को स्वीकार करने में किसी प्रकार के संकोच का अनुभव नहीं करेगी।

(संशोधन संख्या 1052 उपस्थित नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्ष:** दो या तीन संशोधन एक ही समान हैं। मैं जानना चाहता हूं कि उनमें से कौन-सा संशोधन उपस्थित किया जायेगा। वे संशोधन संख्या 1053, 1055, 1057, 1059 और 1062 हैं।

(संशोधन संख्या 1055, 1059 और 1062 उपस्थित नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्ष:** इस प्रकार अब दो संशोधन रह जाते हैं जो एक समान हैं, अर्थात् संशोधन संख्या 1053 और 1057 । मैं संशोधन संख्या 1053 को उपस्थित करने की आज्ञा दे सकता हूं जो प्रोफेसर के.टी. शाह के नाम से है।

***प्रोफेसर के. टी. शाह:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"अनुच्छेद 43 के स्थान में निम्नलिखित रखा जाये:

'43. The President shall be elected by the adult citizens of India, voting by secret ballot, in each constituent part of the Union.' "

(43. प्रधान का निर्वाचन भारत के प्रौढ़ नागरिक करेंगे और वे संघ के प्रत्येक भाग में गूढ़शलाका द्वारा मत देंगे।)

***उपाध्यक्ष:** आप अपना भाषण सोमवार को जारी रख सकते हैं।

सभा सोमवार के दिन प्रात: दस बजे तक के लिये स्थगित की जाती है।

इसके पश्चात् विधान-परिषद् सोमवार, 13 दिसम्बर सन् 1948 ई. के दिन प्रात: दस बजे तक के लिये स्थगित हो गई।